श्रमण



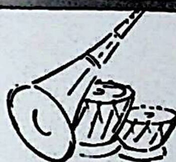
आचार्य लब्धिसूरि स्मृति अंक

जुलाई-सितम्बर 2000



पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

PĀRŚWANĀTHA VIDYĀPĪTHA, VARANASI



शुभ-विवाह

शुभ 卐 लाभ



तीज हो या त्यौहार, शादी हो या घरबार
प्रेस्टीज निभायेगा
भारतीय व्यंजन परम्परा को हरबार



प्रेस्टीज

रिफाइंड ऑइल एवं वनस्पति

प्रेस्टीज फूड्स लिमिटेड, ३०, [illegible] इन्दौर, फोन : [illegible] फैक्स (०७३१) [illegible]

श्रमण

पार्श्वनाथ विद्यापीठ की त्रैमासिक शोध-पत्रिका

आचार्य लब्धिसूरि स्मृति अंक

वर्ष ५१, अंक ७-९ जुलाई-सितम्बर २०००

प्रकाशनार्थ लेख-सामग्री, समाचार, विज्ञापन एवं सदस्यता आदि के लिए सम्पर्क करें

सम्पादक
श्रमण
पार्श्वनाथ विद्यापीठ
आई०टी०आई० मार्ग, करौंदी
पो०आ०-बी०एच०यू०
वाराणसी-221005 (उ०प्र०)

दूरभाष: 316521, 318046
फैक्स : 0542-318046

ISSN-0972-1002

वार्षिक सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए	: रु० १५०.००
व्यक्तियों के लिए	: रु० १००.००
इस अंक का मूल्य	: रु० २५.००

आजीवन सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए	: रु० १०००.००
व्यक्तियों के लिए	: रु० ५००.००

नोटः सदस्यता शुल्क का चेक या ड्राफ्ट केवल पार्श्वनाथ विद्यापीठ के नाम से ही भेजें।

भी आपने अपना प्रवचन देकर पू० गणेश वर्णी जी के योगदान की प्रशंसा की जिससे दिगम्बर सम्प्रदाय आपकी सदाशयता से अभिभूत हो गया।

जैनेतर समाज से भी आचार्यश्री ने स्नेहिल सम्पर्क स्थापित कर लिया है। संस्कृत श्लोक गायन प्रतियोगिता, भाषण आदि अनेक ऐसे कार्यक्रम हुए हैं जिनमें जैनेतर बन्धुओं ने खुले मन से भाग लिया है और आचार्यश्री के व्यक्तित्व को सराहा है।

सारनाथ, चन्द्रपुरी और भदैनी स्थित श्वेताम्बर मन्दिरों का भी जीर्णोद्धार होना तय हो गया है। यह भी आचार्यश्री का ही योगदान है।

चातुर्मास की अवधि में पार्श्वनाथ विद्यापीठ में आचार्यश्री का ससंघ शुभागमन कई बार हुआ। यह हमारा परम सौभाग्य रहा कि हमारे संस्थान का शैक्षणिक वातावरण उन्हें बहुत भाया। उन्होंने इसके साथ इतनी अधिक आत्मीयता जोड़ ली कि इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे सचेष्ट हो गये। **'यस्य देवस्य गन्तव्यं, स देवो गृहमागतः'** वाली उक्ति चरितार्थ हो गई। वाराणसी आचार्यश्री का पधारना संस्थान के लिए एक अत्यन्त शुभ सङ्केत सिद्ध हुआ। उनका मेरे शिर पर विशेष आशीर्वाद है। जो भी मैंने संस्थान विषयक योजनाएँ आपके समक्ष प्रस्तुत कीं, उन सभी को उन्होंने न केवल बिना हिचक स्वीकार किया बल्कि उन पर कार्यान्वयन भी प्रारम्भ करा दिया।

चातुर्मास प्रवेश होने के साथ ही आचार्यश्री का मन पार्श्वनाथ विद्यापीठ के विकास में लग गया। संस्थान में जिन तत्त्वों की आवश्यकता थी, उनसे उन्हें मैंने परिचित करा ही दिया था। तदनुसार उनकी प्रेरणा से चातुर्मास स्थापना दिवस समारोह में ही **राजयशसूरीश्वर विद्याभवन** तथा **उपाध्याय यशोविजय स्मृति मन्दिर** नाम से दो भवनों का निर्माण सुनिश्चित हो गया और आनन-फानन में उनके भक्त अनुयायियों ने इस योजना को तुरन्त मूर्तिमान स्वरूप देने का संकल्प कर लिया। इस संकल्प की पूर्ति में बैन महाराजश्री का भी पूर्ण योगदान रहा। यहाँ हम विशेष रूप से श्री धर्मेन्द्र गांधी (बम्बई) के नाम का विशेष उल्लेख करना चाहेंगे जिन्होंने मेरे निवेदन पर क्षणभर में ५ लाख रुपये के अनुदान की घोषणा कर दी। तदर्थ मैं व्यक्तिगत रूप से उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इसी क्रम में अन्य महानुभावों का भी नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने इस ज्ञानयज्ञ में अपनी किञ्चित् आहुति दी है। वे हैं : श्री रतनलाल मगनलाल देसाई, डॉ० किशोरभाई शाह, श्रीमती मयूरी अजयभाई शाह, श्री अजित समदरिया आदि।

१८वीं शती के सुप्रसिद्ध विद्वान्, गुजरात निवासी उपाध्याय यशोविजयजी का वाराणसी से सारस्वत सम्बन्ध रहा है। इस सम्बन्ध को चिरस्थायी बनाने के लिये आचार्यश्री ने पार्श्वनाथ विद्यापीठ में ही मेरे निवेदन पर यशोविजयजैनग्रन्थमाला स्थापित करने की बृहद् योजना बनायी, परन्तु संयोग से हम उसे समय पर कार्यान्वित न कर

पाये। आशा है, आचार्यश्री के आशीर्वाद से आगामी वर्ष इस योजना को भी मूर्तरूप दिया जा सकेगा। हमारी पत्रिका '**श्रमण**' के प्रचार-प्रसार में आपने अपना योगदान दिया है। इसके लिए भी हम आपके आभारी हैं।

संस्थान में स्थायी रूप से फिलहाल कोई भोजनशाला नहीं चल रही है। इसके पीछे भोजनार्थियों की संख्या की कमी भी अन्यतम कारण है। संस्थान में पधारने पर आचार्यश्री को भोजनशाला की कमी महसूस हुई तथा उन्हें यह भी अनुभव हुआ कि शुद्ध शाकाहारी भोजन मिलना इस क्षेत्र में सरल नहीं है। इस दृष्टि से आचार्यश्री की प्रेरणा से श्री निर्मलचन्द गांधी, वाराणसी ने १ लाख ५१ हजार रुपये की अनुदान राशि देकर भोजनशाला का जीर्णोद्धार कराया। आचार्यश्री का प्रयत्न है कि इस अनुदानराशि के अलावा प्रतिदिन की भोजन-व्यवस्था की दृष्टि से पर्याप्त धनराशि इकत्र हो जाये। इसलिये उन्होंने ११०१/- रुपये प्रतिदिन की अनुदान राशि निश्चित करा दी।

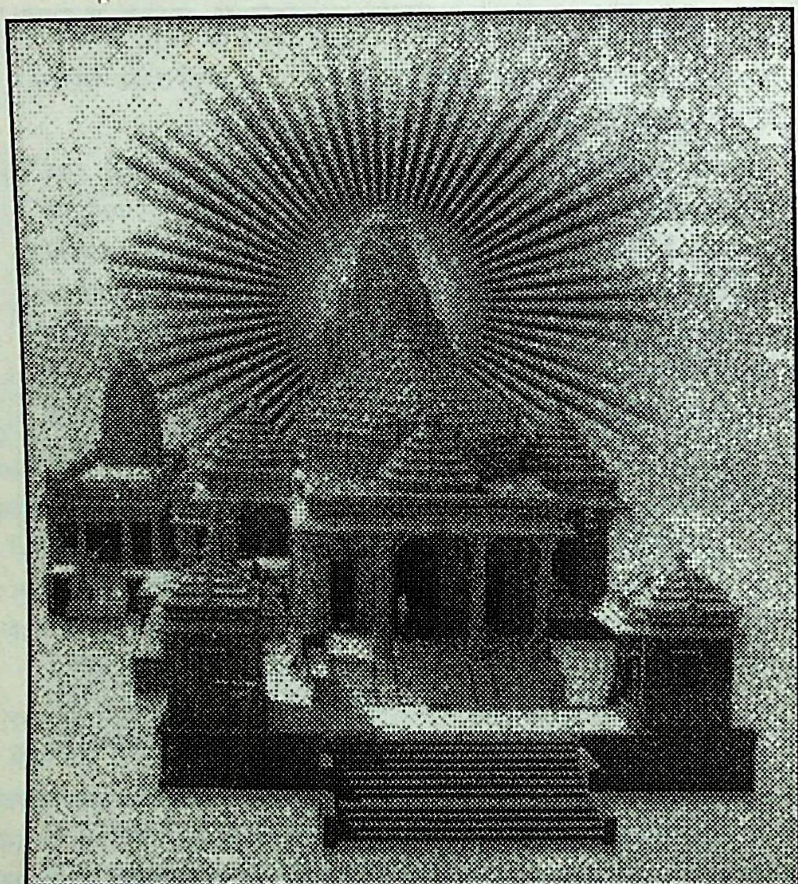
आचार्यश्री कला के ममर्ज्ञ हैं, जीवन्त प्रतीक हैं। उन्होंने जीर्णोद्धार ट्रस्ट, वाराणसी के माध्यम से पार्श्वनाथ विद्यापीठ में ही रंगोली प्रदर्शनी तथा चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन कराया। इसके निर्माता श्री रमणीक भाई (मुम्बई) रहे। चित्रकला प्रतियोगिता में लगभग १३०० छोटे-मोटे कलाकारों ने भाग लिया। इससे जैन संस्कृति का अद्भुत प्रचार-प्रसार हुआ। इसमें प्रतियोगियों को भली-भाँति पुरस्कृत भी किया। जिनमन्दिर की भव्य प्रतिष्ठा के अवसर पर ये दोनों आयोजन संस्थान की दृष्टि से भी बड़े महत्त्वपूर्ण रहे।

कुल मिलाकर आचार्यश्री राजयश सूरीश्वरजी के इस वाराणसी चातुर्मास की फलश्रुति के विषय में जब हम सोचते हैं तो हमें यह अनुभव होता है कि वे वाराणसी में, विशेष रूप से पार्श्वनाथ विद्यापीठ में एक देवदूत बनकर आये हैं जिनकी पुनीत प्रेरणा से हमारे यहाँ का वातावरण आध्यात्मिक और शैक्षणिक दोनों का समन्वित रूप बन गया है। यदि आपका एक चातुर्मास और यहाँ हो जाये तो अवशिष्ट योजनाएँ भी पूर्ण हो जायेंगी। आप निरामय होकर शतायु हों यही हमारी शुभकामनाएँ हैं इस विनम्र निवेदन के साथ कि आगामी चातुर्मास आप हमारे पार्श्वनाथ विद्यापीठ में करें।

यह अंक पू. स्व. आचार्यश्री लब्धिसूरि जी की पुनीत स्मृति में प्रस्तुत हो रहा है। आशा है, पाठक उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की एक झलक ले सकेंगे।

प्रोफेसर भागचन्द्र जैन 'भास्कर'
प्रधान सम्पादक

●



नवनिर्मित श्वेताम्बर जैन पार्श्वनाथ जिनालय
भेलूपुर, वाराणसी

जिनबिम्ब प्रतिष्ठा समारोह
दिनांक १० नवम्बर से १७ नवम्बर २०००

प्रतिष्ठाचार्य
प.पू. आचार्यदेव श्रीमद्विजय राजयशसूरि म.सा.

यशोगाथा

महापुरुष का जन्म : जन्म लेते ही जहां उत्तम वातावरण की प्राप्ति हो, वह है उत्तमकुल और जन्म लेते ही मलिन वातावरण की प्राप्ति हो, वह है हीनकुल। इसलिये भारतीय-महर्षियों ने उत्तमकुल के असीमित गुणगान किये हैं। आज भी हमारे मस्तिष्क में यह संस्कार दृढ है। इसलिये किसी महापुरुष की यशोगाथा सुनते ही हृदय में प्रश्न उठता है कि किस कुल को इस महात्मा ने पावन किया है? इस महापुरुष के माता-पिता बनने का सौभाग्य किसे प्राप्त हुआ था? इन प्रश्नों का जवाब देना भी उचित है।

आज मैं जिस महात्मा की 'यशोगाथा' आलेखित करने के लिये तत्पर बना हूँ, इस भाग्यशाली बालका का नाम था **'लालचंद'**। क्या यह नाम भी कुछ दिल लुभानेवाला महसूस नहीं होता है?

धन्यभागी पिता का नाम था **पीतांबर** । जैन परंपरा में आचार्य का पीत वर्ण कल्पित है। आश्चर्य ! पिता ने भावी जैनाचार्य पुत्ररत्न के वर्णवाला वस्त्र पहले से ही ग्रहण कर लिया।

जन्मदात्री का धन्य नाम था **'मोती'**। मोती तूँ मोतीकुक्षी ही बनी।

जिस गाँव की धूलि ने इस बालक के देह को मलिन करने की व्यर्थ चेष्टा की थी वह पुण्यनगर है **'बालशासन'** (गुजरात का छोटा गाँव)। बालशासन ! तूँ तो अब भी बालशासन ही रहा लेकिन तेरे दुलारे तो शासनप्रभावक बन गये।

लालचंद का जन्म कुल था 'जैन'। इस कुलमें भक्ति, श्रद्धा और वैराग्य के संस्कार सहज होते हैं। आज भी महद् अंश में यह बात सत्य है।

भावी महापुरुष बालक लालचंद का जन्म ऐसे निर्मल वातावरण में होना उचित ही था।

अद्भुतपरिवर्तन : माँ के उदर में आते ही यह मानवजीव उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ उपस्थित संयोग के अनुकूल बनने की चेष्टा करता है, लेकिन महान् आत्माओं की यह विशेषता होती है कि वे केवल देह से नहीं, आत्मगुण से भी अभिवृद्ध होते जाते हैं। बालक लालचंद के विषय में भी वही बात थी। तीन साल की शिशुवय में भगवान् के समवसरण में अपने आपको पावनकारी वाणी पान करते देखा था। आबाल वय से ही भगवान् के मुखारविंद के भ्रमर बन चुके थे। यह अनुभव इतना गहरा था कि वृद्धावस्था में भी आपकी स्मृतिपथ पर बार-बार वह शिशुअवस्था का दृश्य उपस्थित हो जाता था।

निरंतर गतिमान काल ने लालचंद को शैशव से युवावस्था में प्रवेश कराया। लेकिन पूर्व जन्म के उद्भूत आत्मसंस्कारों ने अवस्थासहज विकार का प्रवेश अवरुद्ध कर दिया। परिणाम यह आया कि आत्मा में परमात्मा बनने की तड़प पैदा हुई।

.... लेकिन परमात्मा तो इंद्रियविजेता बन सकता है, परमात्मा कषाय अग्नि से अदग्ध होता है।

युवा लालचंद ने परमात्मा बनने का निश्चय कर लिया था इसलिये ही परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति में लगे हुये मुनिवरों का वह चरणसेवक बन गया। फलतः जीवन में अद्भुत परिवर्तन हो गया। संसारी आत्मा परमात्मा बनने की तड़पन से संयत आत्मा बन गया-मुनि बन गया। युवा लालचंद २० वर्ष की उम्र में मुनि लब्धिविजय बन गये।

गुरुकुलवास : माँ और गुरु में यदि अंतर हो सकता है तो इतना ही, कि माँ प्रधानतया देहचिंता करती है और गुरु प्रधानतया आत्मचिंता करता है। माँ के खुद के अन्न से बने हुए निर्मल दूध से पोषण करती है। गुरु खुद के कष्टमय शास्त्राभ्यास से।।

मुनि लब्धिविजय का आत्मपोषण करनेवाले थे सद्धर्म संरक्षक जैनाचार्य श्रीमद्विजयकमलसूरीश्वरजी म. सा.। आपकी विशेषता यह थी कि आप ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे और इसी कारण से वेद पारंगत भी। आपके गुरु थे जैनाचार्य विजयानंद सूरीश्वरजी जो पंजाब के सिख कुल में उत्पन्न हुए थे। मुनि लब्धिविजयजी के गुरु और प्रगुरु दोनों ही जन्मना नहीं अपितु कर्मणा जैन बने थे। इतना ही नहीं, उक्त दोनों महापुरुष स्थानकवासी जैन संप्रदाय में रहे भी, लेकिन शास्त्र का सूक्ष्म अध्ययन और सात्त्विकता में उक्त दोनों महापुरुषों को भगवान् के सर्वस्वरूप को माननेवाली शास्त्रनिर्दिष्ट परंपरा में परिवर्तित होने के लिये बाध्य किया।

संवत् १९३२ के ऐतिहासिक संप्रदाय परिवर्तन में करीब २० महात्मा थे। आपके प्रगुरु विजयानंदसूरीश्वरजी इस यूथ में सबसे बड़े और आप के गुरु आचार्यदेव कमलसूरीश्वरजीमहाराज सब से छोटे थे।

माता के प्राकृतिक संस्कार बच्चों को प्राप्त होना सहज है। इस तरह शिष्य को गुरु-परंपरा से शास्त्रप्रेम और सात्त्विक्ता प्राप्त होना सहज है।

मुनिजीवनमें गुरुकुलवास असाधारण गुणों का जनक बनता है। केवल साधक अवस्था तक ही गुरुकुलवासकी जरूरत है- ऐसा मानना भ्रांतिपूर्ण है। आजीवन गुरुकुलवास भी महान् साधना का विषय है। विनय, सतत् सहनशीलाता और स्वाभाविक निरभिमानता के बिना आजीवन गुरुकुलवास अशक्य है। संयुक्त-कुटुम्ब में

रहनेवाले व्यक्ति में कुलीनता अवश्य होती है, वैसे ही आजीवन गुरुकुलनिवासी के जीवन में बिना प्रयास के महान्-गुण सहज प्राप्त हो जाते हैं। आचार्यश्री प्रायः आजीवन गुरुकुलवासी बने थे, गुरुके सिर का बोझ नहीं- अपितु गुरु का बोझ उठाकर। इस भव्य गुरुकुलवास ने जीवन में श्रद्धा, वैराग्य और सहनशीलता को आत्मसात करने का अमूल्य अवसर दिया जो मुनिजीवन का सबसे महनीय साधना का अविभक्त अंग है।

अभ्यास : विद्याधनी मुनि के लिये विद्या प्राण से भी अधिक प्रिय होती है। पुराने जमाने में अभ्यास के साधन अत्यल्प थे और अभ्यास अनुराग महान् था। अल्प साधन से अनल्प प्राप्त करनेकी तड़पन रोमांचको विकस्वर कर देनेवाली होती है। बालजीवनसे आचार्यवर्य विद्याके व्यसनी बन चुके थे। अभ्यासी तीन प्रकार के होते हैं।

१. गुरु का पढाया हुआ भी नहीं पढ़नेवाला।
२. गुरु का दिया हुआ पढ़ने से तृप्त होनेवाला।
३. गुरु की शिक्षाको आत्मसात कर उसमें अत्यन्त वृद्धि करनेवाला।

आचार्यवर्य तीसरे वर्ग के अभ्यासी थे। आप बहुत छोटे-छोटे ग्रंथ पढ़ते थे। लेकिन महान् ग्रंथों के रहस्य आत्मसात कर लेते थे। आपका अभ्यास केवल पठनान्वित नहीं अपितु चिंतनान्वित भी था। इसी कारण आप अभ्यास की मस्ती में कड़ी धूप को भूल जाते थे। गर्मी के दिनोंमें अग्नितप्त छतों के नीचे बैठकर अभ्यास करना आपके लिये कष्टदायी नहीं था। गुरु महाराज के दंडासनकी भीमकाय लाठी प्रति रात्रि में प्रहाररूप आशीर्वाद प्रदान करती रहती थी। बड़े प्रेमसे आप नतमस्तक होकर गुरुमहाराज के प्रहार प्रसादका स्वागत करते थे। चिंतनान्वित अभ्यास से आपका ज्ञान गहरा बना और गुरुबहुमान से ज्ञान आत्मपरिणत बना, आत्मपरिणत एवं सूक्ष्म अभ्यासके कारण आप अभ्यासकाल में ही विद्वान् बन गये। अध्ययन कालमें अध्यापक बन गये। सहपाठी ज्येष्ठ मुनिवृंद भी आपके अभ्यास से आकृष्ट थे।

अभ्यास व्यसन-रस आपको इतना लगा था कि अपना नियत अभ्यास अत्यंत शीघ्रता से पूर्ण कर देते थे। समयका बचाव करके आप अन्य विषय में स्वयं ही प्रगति कर लेते थे। जब कोई सैद्धांतिक अभ्यासी सिद्धांतके गहन-विषयमें संदिग्ध हो जाते थे, तो आप उन्हें निश्चित बना देते थे। जब ज्येष्ठ मुनिगणों को यह अनुभूति होती तो वे आश्चर्यसागरमें डूब जाते। 'जिस विषय की पढाई नहीं की, उस विषय के निपुण भी यह उत्तर नहीं दे सकते तो आप कैसे दे सकते हैं'' पर उत्तर देने मात्र से आप कृतार्थ नहीं होते, अपितु शास्त्र पाठ से

प्रमाणित भी करते थे, तब लोग जान लेते थे कि आप केवल पढ़ाई करनेवाले नहीं अपितु अत्यंत परिश्रमी भी हैं। यह थी, आपकी अभ्यास काल की सहज सिद्धियाँ।

विद्धता : यद्यपि ज्ञान व्यसनियों का अभ्यासकाल जीवनकाल के साथ ही समाप्त होता है, फिर भी नियत अभ्यास के बाद व्यक्ति विद्वान् बन जाता है। आपने अत्यंत लघुवय में नियत अभ्यास को पूर्ण कर दिया और अनुपम विद्वान् बन गये।

मानव की विद्वत्ता केवल एक क्षेत्र में पर्याप्त नहीं होती। गहन तर्क को समझनेवाला विद्वान् कभी अध्यापन के क्षेत्र में अशक्त भी होता है। स्थूल-पृथक्करण करके समझानेवाला व्यक्ति कभी गहन चीज समझने में भी नाकामयाब होता है। कभी लेखक काव्यक्षेत्र से दूर भागता मालूम पढ़ता है। मनोहर कवि कभी वक्ता के रूप में असफल देखा जाता है। अर्थात् 'विद्वत्ता' शब्द बहुत व्यापक है। ऐसी 'व्यापक विद्वत्ता' प्राप्त होना जगत् का चमत्कार गिना जाता है। आचार्यवर्य की विद्वत्ता व्यापक विद्वत्ता थी।

जिस क्षेत्र में आपने प्रवेश किया उस क्षेत्र को आपने प्रभावित किया।

आपकी गौरववंत व्यापक विद्वत्ता के सभी पहलूओं पर प्रकाश डालना यहाँ कठिन है फिर भी दो चार प्रभावक विद्वत्ता का यत् किंचित् ख्याल करायेंगे।

वक्तृत्व : "वक्ता दशसहस्रेषु" उपरोक्त चिरंतन उक्ति बताती है कि वक्तृत्व कला की साधना कोई आसान कार्य नहीं है। यद्यपि आधुनिक युग में यह उक्ति कोई असत्य कराने का साहस कर सकता है लेकिन जिस अर्थ में इस उक्ति का उच्चारण हुआ है उनकी तह तक जाकर ख्याल किया जाय तो यह संभवित नहीं होगा। क्योंकि आज के बहुधा वक्तागण सिद्धांतहीन, लक्ष्यहीन और अमौलिक विचारधाराओं को बहानेवाले बन गये हैं। कई धर्मगुरु भी इस मलिन प्रवाह में खिंचे जा रहे हैं। इस कोटि में प्रविष्ट वक्ताओं में वाक्प्रवाह और मोहक शब्दजाल का बड़ा भारी वैभव है। लेकिन यह केवल वक्तव्यता का वैभव है, आत्मतत्त्व नहीं। वक्तव्य में सैद्धांतिकता, लक्ष्यनिष्ठता एवं मौलिकता स्व-तत्वरूप हैं। आत्मतत्त्वशून्य वैभव आकर्षक होने पर भी कल्याणकारी नहीं है।

आचार्यवर्य के वक्तव्य में अनोखा वैभव था लेकिन चैतन्य से परिपूर्ण। संयम जीवन के तृतीय वर्ष पूर्ण होते ही आप गुरुमहाराज के सुधर्मपीठ के उत्तराधिकारी के रुप में निर्णीत हो चुके थे। यद्यपि आप सबसे छोटे थे तथापि सभी सहवर्ती मुनियों का गुणानुरक्त चित्त सदैव आपके प्रति आकृष्ट था। जिन

महासभाओं में लोकप्रियता प्राप्त करनेवाले सिद्धान्तशून्य वक्ता उपस्थित होते थे उन सभाओं में भी आप सिद्धांतनिष्ठा को जन-मन में प्रविष्ट कराके सर्वोत्तम प्रीति के पात्र बनते थे।

प्रख्यात् राजनेताओं की सभामें भी आपके सैद्धांतिक प्रवचनों के लिये जनता आतुर रहती थी। इतना ही नहीं, आपके वक्तव्य से प्रसन्न हो जाती थी।

संयम जीवन के प्रारंभकाल से ख्यातनाम आचार्यवर्य को संयमजीवन के बारहसाल पूर्ण करने पर "जैन रत्न व्याख्यान-वाचस्पति" के महनीय पद से आपको गुरुमहाराज ने विभूषित किया। यह पदप्रदान-महोत्सव मनाने का सौभाग्य ईडर नगर (गुजरात) को प्राप्त हुआ था। आपकी सैद्धांतिक व्याख्यानधारा से कई बार विचार संघर्ष पैदा हुए। फलतः ' शास्त्रार्थ' हुए, 'वादविवाद' हुए। इस विषय को हम आगे के प्रकरण में देखेंगे।

आप जन्मतः गुजराती होने के कारण गुजराती में तो व्याख्यान देते ही थे, लेकिन हिन्दी आपकी गुरुभाषा थी। 'संस्कृत' आपकी अध्ययन की भाषा थी। आप मातृभाषा, गुरुभाषा (हिन्दी) और शिक्षाभाषा तीनों में प्रवाहबद्ध व्याख्यान देते थे। आप की हिन्दी भाषा, पंजाबी-फारसी-उर्दू और संस्कृत चारों भाषा के ज्ञान से अत्यंत पुष्ट बनी थी।

यद्यपि आप कई सालों से व्याख्यान देना छोड़ कर आत्मकल्याण में ही संलग्न हो गये थे। फिर भी **द्वादशारनयचक्र** नामक महान् न्याय ग्रंथ के उद्‌घाटन समारोह में (२९-३-५९) आपको संस्कृत भाषा में व्याख्यान देने की पं. विक्रम विजयजी म. ने विज्ञप्ति की। तब आपने संस्कृत वाक्‌प्रवाह से सभी को आश्चर्यमुग्ध बना दिया।

ग्रंथ उद्‌घाटनकार भारत के तत्कालीन उप राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा "मैंने आपका दर्शन करके प्राचीन ऋषियों के साक्षात्कार का परमानंद प्राप्त किया है।"

अर्धमागधी और प्राकृत आप के प्राणतुल्य आगम-सिद्धांत की भाषा थी।

गुजराती-हिन्दीभाषा के आपके वक्तव्य में कविसहज जो प्रासानुप्रास अलंकार प्रवहित था, वह अब जनता को कब सुनने मिलेगा यह प्रतीक्षा का विषय बन गया है। आज भी जनता उस काव्यमय प्रवचन को याद करती है।

आपकी प्रवचन शैली केवल वैभवपूर्ण नहीं अपितु चैतन्यपूर्ण भी थी। परिणामतः जैन-जैनेतर समाज में अनन्य चैतन्य प्रगट हुआ था। यद्यपि आप किसी आंदोलन के प्रवर्तक नहीं थे, फिर भी लाखों लोगों को आपने आंदोलित कर दिया था। यद्यपि आप जैनाचार्य थे, फिर भी वक्तव्य प्रभाव से सामान्य जनता

के परमाराधनीय गुरु बन चुके थे। आपके उपदेशामृत का पान कर सैंकड़ों महानुभाव महाव्रतमय एवं विरक्त जीवन के आराधक बन गये थे। पंजाब की भूमि में प्रत्येक व्याख्यान में जब ५००-५०० मनुष्य मांसाहार और व्यसन का त्याग करते थे तब जैन समाज गौरव सहित लज्जान्वित बन जाता था। गौरव आपके गुरु पर करते थे और खुदकी त्याग शक्ति की अल्प ताकत को देखते लज्जान्वित हो जाते थे। वे सोचते थे शायद गुरु महाराज कह देंगे " आजन्म मांसाहारी ने मांस छोड़ा और आप कंदमूल भी नहीं छोड़ते?"

कई महानुभावों ने आपके उपदेशामृत धारा के प्रभाव से मिथ्या धर्म का त्याग कर दिया, वीतराग धर्म-जिनेश्वर धर्म की शरण स्वीकार किया।

जीवन प्रारंभ से अंत तक आचार्यवर्य ने वक्तृत्व धारा से शासन की परमोन्नति करके हजारों के अंधकारमय जीवन में नवदीप प्रगटित कर दिया था।

वादविजय : सैद्धांतिक वक्ता को सिद्धांत समृद्ध और सिद्धांत समर्थक बनना पडता है। समर्थन के प्रवाह में जो अवरोध होता है उनको दूर करना स्वाभाविक बन जाता है। आपके लिये भी कुछ ऐसा हुआ। आपका सिद्धांत समर्थन कितनेक लोगों को रुचिकर नहीं लगा अतः एवं चर्चा-विचारणा बढ़ने लगी। जब (पराभूत) लोगों को इससे सान्त्वना प्राप्त नहीं हुई तो आचार्यवर्य को शास्त्रार्थ करने का आह्वान दिया गया। यद्यपि आचार्यश्री पर-पराभाव में आनन्द लेनेवाले नहीं थे, लेकिन सत्य-सिद्धांत के उपहास का प्रतिकार करने का संपूर्ण सामर्थ्य रखते थे। अत एव आये हुये आह्वाहनों को जीवन की उदित अवस्था में ही स्वीकार करना पड़ा।

संयम पर्याय केवल आठ साल का था और जीवन पर्याय था मात्र २७ साल। यह उम्र में आपने गीर्वाणगिरा में (संस्कृत भाषा में) वाद् विजय प्राप्त किया। ३५ साल में चार बार ऐसा प्रसंग आया और प्रत्येक में आप विजयी हुए। वाद या शास्त्रर्थ आज लगभग लुप्त होता जाता है। आज का निःसात्त्विक वातावरण देखने से तो लगता है कि जैन शासन के वादविजेता की नामावली में शायद यह नाम अन्तिम ही रह जाय। शास्त्रार्थ करनेवालों के लिये शास्त्राकारों ने कहा है 'शास्त्रार्थ करनेवाले उदार, सत्य का आग्रही, कीर्ति कामना से दूर रहनेवाला होना चाहिये।'

आप सत्य के संपूर्ण समर्थक थे, ऐसा होते हुए भी आपकी अनेकांतात्मक उदारता बहुत भव्य थी।

एक वादी का अभिमत था कि वेद अनादिकालीन हैं उनके बनानेवाले कोई नहीं। इस विषय पर वाद करते हुये वादी पराभूत हो गया वाद की समाप्ति में

आपने मधुरता से कहा " भाई नाराज न हो, मैं स्याद्वाद से आपका अभिमत सिद्ध कर सकता हूँ।।"

. जब अनुपम युक्ति निचय से आपने यह भी सिद्ध कर दिया तो वादी आचार्यवर्य की विद्वत्ता और उदारचरितता को देखकर खुश हो गया। वादी ने कहा कि मैं अपने आपको पराभव से अपमानित हुआ मानता हूँ। लेकिन मेरे विजेता में यदि अपमानित करने की लेशमात्र इच्छा नहीं है तो मुझे भी खेद करने की लेश मात्र भी जरुरत नहीं है। परिणाम यह आया कि प्रतिवादी के हृदय की भावना भी आपकी उदारता के सामने झुक गयी। वह भी पराभूत हो गयी।

इसी तरह से आपने वाद भूमि को भी पवित्र कर दिया। वादी को जो मन:सन्तुलन रखना पड़ता है वह कठिनता से सिद्ध होता है। वह आपके लिये सहज था। वाद गीर्वाणगिरा में ही होता था। महोपाध्याय यशोविजय महाराज के बाद यश:पूर्ण वाद विजय की यह सर्वप्रथम ऐतिहासिक घटना है।

कवित्व : जीवन के प्रारंभ से आपको कविता सहज थी। कविता का आर्विभाव सहज संवेदनात्मक अनुभूति से होता है।

आपका चित्त प्रभु भक्ति में इतना प्रसन्न रहता था कि आप जब भगवान् के दर्शन करते तो लोग दर्शन किस तरह करना-यह सीखने के लिये आते थे।

बालक जैसे सरल भाव से जब आप भगवान् के मंदिर में उपस्थित होते थे, तब हजारों को भगवान् के परम भक्त को देखने का शुभ अवसर प्राप्त होता था। प्राय: आपकी कविता में यही भक्त-सहज हृदय की गहरी अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। आपने उर्दू-संस्कृत-गुजराती एवं हिन्दी भाषा में अनके कृतियाँ निबद्ध की हैं। आपका 'स्तवन संग्रह' ज्ञाति-जाति और संप्रदाय का भेद भूलकर घर-घर में आदर पाता है। महातीर्थाधिराज शत्रुंजय के यात्री नहीं अपितु वहाँ के शचक गण के मुख से भी आपका स्तवन सुना जाता है।

आपके काव्य में अलंकार वैभव और शाब्दिक सरलता के साथ अर्थ गांभीर्य भी था। इस कारण से आपकी कृतियाँ बाल जीवों के साथ विद्वत् जगत् के दिलको भी आकृष्ट कर लेतीं थीं। आपके काव्य गुंफन में आपकी 'आधुनिक प्राचीनता' अर्वाचीन युवकों को प्राचीनता का मूल्यांकन समझाने में सफल बन जाती थी।

"वैराग्य रस मंजरी" नामक संस्कृत पद्यग्रंथ केवल १५ दिन में आपने बनाया था और 'स्तवन' ' 'सज्झाय' आदि तो किसीके भी मांगने पर फौरन ही आप बना देते थे। आपकी कई 'सज्झाय माला' और 'स्तव माला' प्रकाशित हो चुकी हैं। "नूतन स्तवनावली" में सब काव्य संगृहीत किये गये हैं। इस से

अतिरिक्त भी आपकी स्तवन एवं स्तुति संग्रह आदि पुष्कल रचनायें ग्रंथस्थ हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त आपका 'पूजा संग्रह' भी प्रकाशित हो चुका है। जो तत्वज्ञानमूलक भक्ति की दिशा में भी काफी प्रकाश डालता है। आप केवल कवि नहीं किंतु आशुकवि एवं भक्त कवि भी थे। विद्वानों को यथायोग्य विश्लेषण से आपके काव्य साहित्य से बहुत कुछ प्राप्तव्य है। हिन्दी सहज गजल को भी आपने संस्कृत में प्रतिबिंबित करने का यथायोग्य प्रयास किया है।

ग्रंथरचना : जैसे आप काव्य में निपुण थे वैसे ही आप अच्छे लेखक भी थे। संयम जीवन के प्रारंभ से ही आपकी लेखनी वेगवंत हो चुकी थी। प्रारंभ में आपने **दयानंदकुतर्कतिमिरतरणि** नामक ग्रंथ बनाया था। आज भी यह हिन्दी भाषा का ग्रंथ विद्वानों को आनंद देता है। **मूर्तिमंडन** आदि कई ग्रंथ आपने हिन्दी भाषा में बनाये थे।

संस्कृत भाषा में आपने एक लघु शिष्य की विज्ञप्ति को मान्य करके **तत्त्वन्यायविभाकर** नामक महाग्रंथ निर्माण किया। जैन दर्शन के तत्त्वविषयक एवं न्यायविषयक अनुपम विचारों का इस ग्रंथ में संदोहन है। इस महाग्रंथ पर बड़ी स्वोपज्ञ वृत्ति का भी आपने निर्माण किया है। **सम्मतितत्त्वसोपान** एवं **सूत्रार्थमुक्तावलि** आदि आपके ग्रंथ प्राचीन ग्रंथों की कठिनता को सुगम बनाने में सफल रहे हैं।

आपको प्रतिदिन नूतन साहित्य निर्माण करने का अभ्यास था। फलतः एक विशाल साहित्य निर्माण हो चुका है, जो आज तक अप्रकाशित अवस्था में है। शीघ्रता से उसे प्रकाशित करने की आज आवश्कता है।

आप नव्य ग्रंथ निर्माण के साथ प्राचीन ग्रंथों के पुनरुद्धारक भी थे। **नयचक्र** ग्रंथ का संपादन करके आपने बहुमूल्य ग्रंथरत्न को पुनर्जीवन दिया। इस संपादन कार्य में आपने खुद के जीवन के बहुमूल्य १५ साल व्यतीत किये। इस ग्रंथ को भी आपने अपनी उम्दा टिप्पणी से अलंकृत किया है। इस ग्रंथ रत्न के चारों भाग आज प्रकाशित हो गये हैं।

सर्वसाधारण जनता की जिज्ञासा को तृप्त करने के लिये आप (कल्याण-मासिक) के शंका समाधन विभाग में पाठकों की शंकाओं का निरसन करते थे। यह प्रश्नोत्तरराशि भी एकत्रित होकर प्रकाशित की जायेगी। **मेरुत्रयोदशी** आपकी पद्यबद्ध संस्कृत कथा है।

मूर्तिमंडन इस उर्दू भाषा में विरचित ग्रंथ के हिंदी भाषा में तीन संस्करण हो चुके हैं। यह ग्रंथ विश्वधर्मों में मूर्तिपूजा को अकाट्य युक्तियों से सिद्ध कर देता है। जैन-जैनेतर सबको यह पुस्तिका सत्य प्रकाशिका बन चुकी है। **अविद्यांधकारमार्तंड** सर्वदर्शनों के मुख्य विषयों की अल्प चर्चा करता हुआ जैनदर्शनविषयक समीक्षात्मक गहननिबंध है।

स्वाध्यायरतता : मुनि जीवन का महनीय एवं प्रधान व्यवसाय है स्वाध्याय। 'स्व का अर्थ है आत्मा और 'अध्याय' का अर्थ है 'अत्यंत लाभ'। आत्मा का (आत्म गुणों का) जिससे अत्यंत लाभ हो इसका नाम है 'स्वाध्याय'। शास्त्र में इस स्वाध्याय के पांच प्रकार बताये गये हैं, जो मुनि जीवन के उत्थान के प्रत्येक क्षेत्र को आवरित कर लेता है। आप जीवन के प्रारंभ काल से अत्यंत स्वाध्याय प्रेमी थे। आगम एवं शास्त्र तो आप कंठस्थ करते ही थे। लेकिन वाचन समय में कोई भी अच्छी चीज आ गयी तो आप कंठस्थ ही कर लेते थे। जब आप व्याख्यान में कोई भी शास्त्रीय चीज पेश करते थे तब फौरन ही शास्त्रपाठ बोलते थे। इस स्वाध्यायरतता ने ही आपको अलौकिक योगी एवं परमवैराग्यवान बनाया। शास्त्र स्वाध्याय का तात्कालिक फल बताते हुए धर्मदासगणि महाराज कहते हैं कि **''सज्झाये वट्टमाणस्स खणे खणे जाय वेरग्गं''** स्वाध्याय वर्तित आत्मा में प्रतिक्षण वैराग्य पैदा होता जाता है। आप के लिये स्वाध्याय एक व्यसन बन चुका था। जब मोतियाबिन्द से आपके नयनों की ज्योति कुछ कम हुई थी, तो पढ़ना कठिन हो गया, बिना पढ़े नया ज्ञान कैसे मिले? अपने शिष्यों से भंडारस्थ बड़े-बड़े अक्षरोंवाली एक प्रति मंगवाई और एक-एक अक्षर पर दृष्टि न्यास करते हुए आप शास्त्र को मुँहजवाब करने लगे। यद्यपि आप बड़े ग्रंथकार भी थे लेकिन परमात्मा की वाणी तो मुँह जबान करनी ही चाहिये यह आपका आग्रह था। जब युवावस्थ स्वस्थ साधु या श्रावक एक-महान् तत्त्ववेत्ता का यह महान् पुरुषार्थ देखते थे तब महान् मूक उपदेश प्राप्त करते थे और इस महान् प्रेरणा स्रोत से थोड़ी बूंदे मिलाकर जीवन सफल बनाने के लिये कृतप्रतिज्ञ बनते थे। ज्यों-ज्यों देह शिथिल होता गया, त्यों-त्यों आपकी स्वाध्याय तमन्ना गाढ़ बनती गयी। उपाध्याय यशोविजयजी महाराज का **अध्यात्मसार** आपने पूर्वावस्था में कंठस्थ ही कर लिया था और अंतिम अवस्था में **उत्तराध्ययन** को कंठस्थ करना प्रारंभ कर दिया था। इस अवस्था में आप योग्य शिष्यों के सिर पर उत्तरदायित्व देकर निवृत्त हो गये थे।

प्रत्येक दर्शनार्थी आपके 'धर्मलाभ' के मधुर स्वर से पवित्र हो जाता था और बहुत अधिक हो तो दो चार मीठे वाक्य सुनने का अवसर मिल जाना इससे अतिरिक्त इस अवस्था में आप अधिक कुछ बातचीत नहीं करते थे, कारण इस उम्र में भी आपको स्वाध्यायविक्षेप नापसंद था। रात्रि के दो-तीन बजे यदि कोई मुनि नींद से जागृत होते थे तो आपको स्वाध्याय करते हुये देखकर दंग हो जाते थे।

स्मृति-वैभव : प्राय: बाह्य विश्व को दीर्घकाल आत्मसात् करने का नाम है स्मृति। आचार्यवर्य की बुद्धि बचपन से बड़ी तेज थी। आपका व्याख्यान प्राय: हजारों सुयुक्तियों से प्रचुर होने का यही कारण था कि आप कोई भी अभिनव

उक्ति को देखते ही उनको स्मृति की दीवाल पर आलेखित कर देते थे। 'स्वाध्याय-रतता' 'स्मृति-प्रभाव' और 'सूक्ष्म-मति' का जहाँ सुभग मिलन पाया जाता है वहाँ देव के गुरु बृहस्पति को भी लज्जान्वित बन जाना पड़ता है।

स्वाध्याय रत होने के कारण आचार्यवर्य नये-नये ज्ञान से प्रतिदिन अभिवृद्ध होते जाते थे। बेजोड़ स्मृति होने के कारण ज्ञान आत्मसात् होता जाता था और सूक्ष्म-मति होने के कारण अपरिसीम शास्त्र रहस्य को चिंतन द्वारा प्रगटित करते थे। ज्ञान के विषय में तो आपका स्मृति वैभव बहुत ही चमत्कारिक समझा जाता था लेकिन सर्व सामान्य विषय में भी आपकी स्मृति शक्ति बहुत ही चमत्कारिणी थी।

सामान्यतः हम बहुत काल के पीछे चिर परिचित आदमी को एवं घटनाओं को भी भूल जाते हैं लेकिन आचार्यवर्य सामान्य बालकों को भी कभी भूलने वाले नहीं थे। ढाई साल की उम्र से अंत तक का अनुभव आपको अंतिम दिन तक उपस्थित था।

कभी वंदनार्थी दूर देश से दस-पंद्रह साल बाद आते थे तो वे सोचते थे कि आचार्यवर्य उनको भूल गये होंगे लेकिन वंदन करने के प्रथम ही आचार्यवर्य उस महोदय को उसके नामसे बुलाते थे तो आनेवाला व्यक्ति मुग्ध हो जाता था। कितने लोग तो इसको चमत्कार ही मान बैठते थे। वस्तुतः वह चमत्कार नहीं अपितु स्वभाविक शक्ति थी। आप न कभी अवधान सीखे न कभी अवधान सीखने की जरूरत थी। हाँ, अवधानी को आपकी सहज स्मृतिशक्ति से बहुत कुछ प्राप्तव्य था।

यौवन अवस्था में जब आप किसी मत की आलोचना करते थे तो पूर्वपक्ष का एवं उत्तरपक्ष का विधान किस पुस्तक में एवं किस पन्ने पर है वह भी आप बता देते थे **तत्त्वन्यायविभाकर** जैसे ग्रंथ के सूत्र आप रात्रि के समय में ही बनाते थे और दिन में जब समय मिलता तब किसी के पास लिखा देते थे अर्थात् पुस्तक पर ग्रंथलेखन तो पीछे होता था पहले आपके स्मृतिपट पर ही अंकित हो जाता था। शीघ्र कवि होने के कारण आप कई कृतियाँ अवसर पर बना देते थे और अवसर व्यतीत होते के काफी समय के बाद भी आप वह कृति परिचित सूत्रपाठ जैसे बोलते थे, तब सुननेवाला उलझन में पड़ जाता था।

सामान्यतः वृद्धावस्था में मनुष्य के स्मृतिपट के दृश्य विलीन हो जाते हैं और वृद्धावस्था में जब आदमी रोग से परिवेष्ठित हो जाता है तब तो स्मृतिशून्य ही महसूस होता है। वृद्धावस्था में तो क्या भयानक रोगावस्था में भी आचार्यवर्य की स्मृति-शक्ति अत्यंत तेज पायी गयी।

आपके कालधर्म (देहांत) के कुछ दिन पहले एक शिष्य (उ० जयंत

विजयजी) ने चाहा की हम आचार्यवर्य की स्मृति शक्ति का परीक्षण करें। आचार्यवर्य को उनका बनाया हुआ एक श्लोक सुनाया और कहा कि साहेब। "कितना बढ़िया यह श्लोक है किस महापुरुष ने बनाया होगा ?"

आचार्यवर्य ने कहा 'वत्स ! यह श्लोक कोई महापुरुष ने नहीं बनाया है लेकिन जिस व्यक्ति ने बनाया है उनको ही तूं सुना रहा है।' शिष्य ताज्जुब हो कुछ बोलना चाहता था लेकिन क्या बोल सकता था ! मन ही मन में सोचने लगा की मैंने कितना साहस कर दिया। जिस महापुरुष का वीर्यऊर्ध्व जाकर स्थित हो गया है वे कभी विस्मृति की जाल में फंस सकते हैं ?

अंतिम दिनों की रुग्ण अवस्था में कई शिष्यगण आपको अत्यंत भक्ति से आकृष्ट होकर प्रतिक्रमणादि क्रिया कराने के लिये आते थे। जब कोई स्थान पर शिष्य स्खलित हो जाते थे तो आचार्यवर्य ठीक परिमार्जन कर देते थे।

भारतभूमि के लिये अंतिम दिनों तक स्मृति-वैभव से विभूषित रहनेवाले शायद यह आखरी महात्मा ही होंगे। पतनशीलकाल को एक ऊर्ध्व महापुरुष प्राप्त होना अशक्य नहीं तो भयंकर दुःशक्य तो अवश्य ही है।

वैराग्य : १८ साल की यौवनवय में विषयों से स्वाभाविक विरक्तता आत्माकी पूर्वजन्म की वैराग्य साधना का प्रबल पूरावा है। आचार्यवर्य को संसारी-रिश्तेदारों से संयम की अनुज्ञा बहुत कठिनाई से भी प्राप्त हुई थी। इसीलिये आपने तीव्र वैराग्य के स्थायी आवेग से घरसे तीसरी बार भाग जानेका प्रयत्न किया। पुरुषार्थ भाग्य को खींच लाया और तीसरी बार का आपका प्रयत्न सफल बना। यद्यपि संसारियों ने पीछा नहीं छोड़ा तो भी आपका वैराग्य देखकर सबको झुकना पड़ा।

कहने का मतलब यह है कि आपके उत्थान काल से ही आपकी वैराग्य भावना का परीक्षण चालू हो गया था। गुरु महाराजजी की पंजाबी प्रकृति में निर्बल वैरागी का टिकना मुश्किल था। लेकिन आपको बाधा नहीं अपितु आनंद की अनुभूति होती थी। दीक्षा-काल के प्रथम दशक में पंजाब भूमिका विकट और निःसहाय विहार अल्प वैरागी को नरक के दुःख के समान भयानक था लेकिन आपने तो **'देवलोगसमाणो अ- परियाओ महेसिणं'** (वैराग्यवान् महर्षियोंका संयम का दुःख देवलोक का सुख जैसा है) इस शास्त्र वचन को सत्य बनाया।

यौवनकालमें भी आपका वैराग्यबोधक ब्रह्मचर्य-तेज दुर्बलों के लिये असह्य बन जाता था।

कष्ट में एवं ग्लानावस्थामें तो वैराग्य की पराकाष्ठा देखी जाती है। आपको बीमारी कई बार लपटमें ले चुकी थी। लेकिन आपकी सहन-

शीलतासे वैद्य लोग भी दंग हो जाते थे। वृद्धावस्था में कई बार आपको नींद आती थी तब आप कहते थे 'हे जीव। तूं किस की प्रतीक्षा कर रहा है, नींद की? कितना मूढ़ हो गया है, चैतन्यमय होकर भी जड़ सदृश-दशा को प्राप्त हुआ। निद्रा भी एक आत्मगुण विनाशक-कर्म की पैदायश है, यह बात क्यों भूल जाता है? 'स्वस्थ हो जा' और वह वैराग्यमय वृद्ध देह में विराजमान जागृत-आत्मा फिरसे स्वाध्याय एवं ध्यानमें लीन हो जाता था। वैराग्य से भरा आपका आत्मदल उत्तरोतर नि:शंक हो रहा था।

क्रियाभिलाष : शास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए शुद्ध संयम का पालन तीक्ष्णधार-तलवार पर नृत्य करने से भी अधिक दुष्कर है। संपूर्ण क्रियाओं का शास्त्रोक्त पालन मुश्किल होने पर भी एक आराधक आत्मा में क्रियाभिलाष होना परम जरूरी है। सम्यक् क्रियाओं को कोसनेवाले सच्चे अर्थ में जैन नहीं हो सकते तो फिर आचार्य कैसे कहा जायेगा? आप में अपार क्रियानुराग भरा पड़ा था। इसलिये तो आप जिंदगी में पोरिसि पढ़ाने जैसी छोटी-छोटी क्रियाओं को भी कभी भूलते नहीं थे। लेकिन दैहिक एवं अन्य कारणों से जो क्रिया आप ठीक ढंग से नहीं कर पाते थे उनका अफसोस आपको रोमरोम में भरा पड़ा था। कोई अच्छे क्रियानिष्ठ को देखते ही 'आपके हृदय में आनंद सागर उमड़ता था।'

वृद्धावस्था में एक दिन आपके पात्रमें मक्खी उड़कर गिर पड़ी और दुर्दैव से मर गई, आचार्यवर्य ने वहाँ ही प्रायश्चित करना शुरू कर दिया और प्रायश्चित्त करने के आद ही आपने गोचरी ग्रहण की।

यह था आपका असीम 'क्रियाभिलाष'।

गुणानुराग : संयम-जीवन में क्रिया-कलाप की दृष्टि से भी अधिक महत्त्व है हृदय का। आप क्रियाभिलाषी होने पर भी गुणानुरागी थे। 'गुणानुराग' के बारे में शास्त्रकार ने कहा है " गुणानुरागी महात्माओं को तीर्थंकर एवं गणधर पदवी भी दुर्लभ नहीं है"। क्षणभर के लिये हमें शास्त्रकथन में कदाचित् अत्युक्ति लगे लेकिन "गुणानुराग" की साधना का यथोचित विचार करने पर हमारा भ्रम नष्ट हो जाता है। 'गुणानुराग' का अर्थ केवल 'प्रशंसा' तक सीमित नहीं है। केवल स्वजन एवं अनुकूल जनों की प्रशंसा तक ही परिमित नहीं है, लेकिन अमित जीव समुदाय में से किसी में लेश गुण दिखाई देने पर हृदय का विकस्वर हो जाना सच्चा गुणानुराग है। 'गुणानुरागी' मिथ्या प्रशंसक नहीं हो सकता और न हो सकता है सूक्ष्मातिसूक्ष्म गुण का द्वेषी। ज्ञान का अजीर्ण अभिमान है। गुणानुरागकी जनेता है नितांत निरभिमानता। अतएव यह नि:संशय सिद्ध हो जाता है कि गुणानुरागी

को ज्ञान अजीर्ण नहीं होता है किंतु अत्युत्तम पाचन होता है। ज्ञान का पाचन एक विरल सिद्धि है। आपने अनंत गुणराशि का जनक एक गुण, गुणनुराग को तो आत्मसात् कर ही लिया था।

क्या स्वशिष्य, क्या परशिष्य, क्या लघु वयस्क, क्या दीर्घपर्यायी, क्या श्रावक, क्या श्राविका, क्या बालक, क्या बालिका प्रत्येक आत्मा में से आपको गुणान्वेषण करना सहज था।

प्रथम परिचय में ही जब सामने उपस्थित व्यक्ति आचार्यवर्य के पुनीत मुख से खुद का गुणानुवाद सुनता तो आश्चर्य सागर में डूब जाता। इस गुणानुवाद में मिथ्या प्रशंसा का स्वर एक भी नहीं होता था। क्योंकि मिथ्या प्रशंसक धूर्त एवं स्वार्थी ही होते हैं। आपकी सरलता के प्रभाव से धूर्तता और आपकी निष्परिग्रहता से स्वार्थ सैकड़ों कोस दूर भागता था। अतएव आप सच्चे अर्थ में गुणानुरागी थे। आपका यह गुण जनजन में इतना प्रसिद्ध है कि आप आज भी कोई परिचित श्रावक से पूछेंगे कि आप आचार्य लब्धिसूरीश्वरजी महाराज को जानते हो? वह व्यक्ति आपको सबसे प्रथम आचार्यवर्य का गुणानुराग का दृष्टांत कथन किये बिना नहीं रह सकेगा। इस कारण से आप सच्चे आराधक आत्माओं के लिये परम श्रद्धेय बन चुके थे।

दिगम्बर भाइयों के साथ सफल शास्त्रार्थ करनेवाले आचार्यवर्य को जब दिगम्बर भाई भी गुरु मानकर सम्मान देते थे तब तो कहना ही होगा कि आपके प्रबल गुणानुराग से आपकी सिद्धांतनिष्ठा कभी व्यक्ति द्वेष में या गणद्वेष में परिणत नहीं हुई थी।

साथमें रहनेवाले शिष्य भक्ति-भाव से आपका विनय एवं आदर करते थे। क्योंकि आपका प्रबल गुणानुराग सबके प्रति वात्सल्य पैदा करने में प्रतिपल सफल रहता था। आपके कालधर्म (देहांत) के बाद जो चिठ्ठियाँ हमें प्राप्त हुई हैं, उन सबसे मानना पडता है कि आप प्रत्येक जनता के हृदय में विशिष्ट स्थान पर आरुढ़ थे।

अतः इतना ही कहना है "गुणी च गुणरागी च सरलो विरलो जनः" उक्ति के अनुसार आप इस संसार की विरलतम आत्माओं में भी मूर्धन्य थे।

सहनशीलता : 'उपसमं खु सामन्नं' साधुत्व की एकशाब्दिक शास्त्र व्याख्या है, उपशम-सहनशीलता।

सहनशीलता ज्ञानादिगुणनिचय का यथायोग्य पाचन और दुःखों की लापरवाही से निष्पन्न होती है। आरंभ से सहनशील आचार्यवर्य की सहनशीलता ज्ञान एवं

वैराग्य की वृद्धि से उपचित होती जाती थी। फलतः आपका अंतिमकाल अनुपम सहनशीलता का प्रकाशक बन चुका था।

बाल्यवय-सहज-परवशता वृद्धावस्था में पुनः दृष्टिगोचर होती है। यह परवशता रोग का सहारा पाकर और भी विषम स्थिति निर्मित करती है। लेकिन सहनशील आचार्यवर्य के लिये यह स्थिति आनंदसागर की मधुर लहर थी। बीमारी के हमलों ने बार-बार आक्रमण करके आपके देह को अत्यंत शिथिल बनाया था, लेकिन सहनशील आचार्यवर्य का पवित्र आत्मदल प्रत्येक हमले से और भी पुष्ट बनता जाता था। अन्तिम दस-पन्द्रह वर्ष में तीन से भी अधिक देहांतक हमले आ गये थे। लेकिन बम्बई का वह रोग-आक्रमण अंतिम बन गया।

यह अंतिम रोगाक्रमण आचार्यवर्य की सहनशीलता से अत्यंत दर्शनीय बन चुका था। एक मास से भी अधिक बीमारी ने यह दर्शनीय पवित्र क्षण की मर्यादा विस्तृत की थी।

आपकी शुश्रूषा में रत साधु-साध्वी एवं श्रावक-श्राविका ही नहीं बल्कि कभी-कभी आनेवाले वैद्य और डॉक्टर भी आपकी सहनशीलता को देखते-देखते मुग्ध हो जाते थे। डॉक्टरों का निदान था की " इतने असह्य दर्दवाला व्यक्ति केवल दैहिक शक्ति से जिंदा रहे यह कदापि संभव नहीं है।" आपका देहयंत्र वैद्यों के लिये आश्चर्यकारी प्रतीत होता था। वे लोग चाहते थे कि ऐसे महापुरुष की देह शुश्रूषा से अल्प आशीर्वाद भी प्राप्त हो जाय तो भी बहुत कुछ है। यद्यपि आपकी इस अवस्था में विनायान्वित साधु एवं श्रावक रात-दिन का भेद भूलकर चौबीस घंटे उपस्थित रहते थे, लेकिन किसीने भी दुःख की आवाज तो क्या दुःख की रेखा भी मुँह पर शायद ही देखी होगी!

सेवा में उपस्थित महानुभावों ने यदि कुछ देखा भी था तो निश्चित कृतार्थता का आनंद। देह दुःख की निर्भीकता का अत्यंत सूक्ष्म लेकिन मार्मिक स्मित !

अंतिम समय की आपकी 'सहनशीलता' से मृत्यु-भय की निरर्थकता सिद्ध हो चुकी थी।

अंतिम-आराधना : सहनशील आचार्यवर्य अंतिम दिन तक चैतन्य थे। नमस्कार महामंत्ररत आचार्यवर्य के नमस्कार महामंत्र की धुन ने लालबाग उपाश्रय (बम्बई) में स्वर्गीय वातावरण का निर्माण कर दिया था। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इस महायज्ञ में उपस्थित रहते थे। जनता के प्रत्येक स्तर के लोग इस धुन में शामिल होते थे। लखपति भी वहाँ थे और सामान्य जन भी, संगीतविद् भी वहाँ उपस्थित थे और संगीत प्रेमी भी, बालक भी आते थे और बुड्ढे भी।

सब की निगाहों में आचार्यवर्य के प्रसादमय मुखारविंद की अनोखी तस्वीर प्रतिबिंबित होती थी।

दर्शन से प्रभावित कई महानुभावों ने चाहा की हम इन पुण्य-पुरुष आचार्यवर्य को वाग्दान करें। साधु-साध्वी सहित समस्त संघ ने वाग्दान का प्रारंभ किया। प्रत्येक आचार्यवर्य की पास में जाता था और यथाशक्ति वाग्दान करता था। प्रत्येक वाग्दान गुणानुरागी गुरुवर्य के चहरे पर नयी रौनक फैलाता था। वाग्दान में माला गिनाने के सामान्य नियम से संयम लेने की महाप्रतिज्ञा का समावेश था। दो-पाँच रुपये के दान से लेकर हजारों के दान का समावेश था। दो-पाँच एकाशन से ऐशी-ऐशी अठ्ठम अनेक मासक्षमण तक का समावेश था। आचार्यदेव को वाग् दान देनेवाले सभी लोग आचार्यवर्य की आनंद रेखा से अनुपम संतोष की प्राप्ति करते थे। माला का वाग्दाता और करोड़ नमस्कार के जाप का वाग्दाता सबका संतोष एक-सा मालूम होता था।

यद्यपि साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकादि समस्त संघ नमस्कार महामंत्र की धुन एवं अन्य अध्यात्मसूत्र का श्रवण कराने में रत था। फिर भी आचार्यवर्य को तो यह नमस्कार महामंत्र श्वासोच्छोवासवत् सिद्ध हो गया था। आप नमस्कार की धुन में तदाकार ही थे। इतना ही नहीं, किंतु आपके शरीर से भी भाग्यशाली महापुरुषों ने नमस्कार मंत्र सुना था। एक श्रावक कहते थे कि आपके स्वर्गवास के दो-चार दिन पहले ही उसने पूज्य गुरुदेव के चरणों से नमस्कार महामंत्र की आवाज· सुनी थी। एक चिकित्सक ने बताया मैंने आचार्यवर्य के सीने पर स्टेथिस्कोप रखा था तो उसमें भी नमस्कारमहामंत्र सुनाई दिया था। यह बात हमें शायद चमत्काररूप लग सकती है। लेकिन मार्मिक आलोचना के बाद आचार्यवर्य की प्रत्येक जीवन घटना भी हमें चमत्कार से अधिक लगेगी।

क्षमापना : 'खामेमि सव्वजीवे' उपशम प्रधान साधु जीवन की मुख्य ध्वनि है, सत्य क्षमापना।

मैत्रीभाव की सर्वोत्कृष्टता से जब आत्मदल पल्लवित हो जाता है, तब वह चाहता है, प्राणी मात्र से सत्य क्षमापना। जो 'क्षमापना' का आकांक्षी है वह दूसरों को क्षमापना देने के लिये भी सदा उद्यत रहता है।

आचार्यवर्य का सहनशील आत्मदल सहज करुणा से आर्द्र था। गुनाही व्यक्ति को भी क्षमा प्रदान करते समय हम बहुत कष्ट का अनुभव करतें है। फिर अपने गुनाहों की ' क्षमायाचना' करना तो कितना मुश्किल होगा? आचार्यवर्य सिद्धांत के रहस्य के तह तक पहुँच गये थे। आप जानते थे कि जैन शासन का सार क्षमा याचन करने में एवं दूसरों को क्षमा प्रदान करने में है। क्षमा याचना

यह नम्रता की कुंजी है। " खुदके शिष्यों भक्तों और सेवकों से कैसे क्षमायाचना की जाये? यह सोचनेवाला मूर्ख है।'' वह क्षमापना के हार्द को नहीं समझ सका है। आचार्यवर्य ने इसी रहस्य को स्वरचित साहित्य में यथास्थान पर अभिव्यक्त किया है।

लेकिन आप केवल साहित्यकार ही नहीं किंतु वैराग्यवान भी थे। यही कारण था कि इस रहस्य को हम आचार्यवर्य के जीवन में अंकित हुआ देखते हैं।

बड़े या छोटे किसी से भी 'क्षमायाचना' में संकोच आप के जीवन में कभी नहीं आया। सैद्धांतिक होने के कारण आप कतिपय विचारों के तीव्र आलोचक भी थे। फिर आपके भी कई आलोचक होना स्वाभाविक था। लेकिन आलोचक समय आने पर गलती को समझ लेते थे, क्षमायाचना भी करते थे। तब आपके चेहरे पर दुःख की एक रेखा या असंतोष का सूक्ष्म चिन्ह भी प्रतीत नहीं होता था।

कालधर्म (देहांत) के दो-तीन दिन पहले सभी श्रावक और साधु-साध्वी गणों को एकत्रित करके आपने सबसे क्षमायाचना एवं क्षमा प्रदान करना चाहा।

यद्यपि आप बीमार थे, फिर भी इस महान् कर्तव्य का पालन करना जरूरी था। बीमारी की परवाह किये बिना आपने अत्यंत नम्रता से सब से क्षमायाचना की। सबको करुणापूर्ण हृदय से क्षमाप्रदान किया।

"वत्स ! आप सबने भगवान् के शासन की आराधना के लिये मेरा सहारा लिया है। मैंने भी प्रभु के शासन की आराधना कराने के यथाशक्ति प्रयत्न किया है। आराधना में आगे बढ़ाने का प्रयत्न यद्यपि शास्त्रके अनुसार किया है, तथापि कोई त्रुटि होने के कारण किसी को भी दुःख हुआ हो तो मैं क्षमा चाहता हूँ।''

गुरु महाराज की क्षमायाचना के मार्मिक वचनों से सभी शिष्य नत मस्तक हो गये। सोचने लगे कि लाखों आतपों को सहन करके भी जीवन में मधुर छाया देनेवाले आज विदा होना चाहते हैं। विदा होने के पहले चाहते हैं एक मात्र " क्षमापना''।

धन्य ! जिनेश्वर तेरे शासन को !

धन्य ! जिनेश्वर तेरे प्रभावकों को ।

प्रत्येक शिष्य-शिष्या आचार्यवर्य के वचन सुनते-सुनते अतीत की अज्ञान या प्रमाद-मूलक स्खलनाओं को आँखों की सामने नृत्य करती हुई देखने लगते थे। प्रत्येक का अंतःकरण यह स्खलनाओं का प्रायश्चित्त के लिये तड़पने लगा। प्रत्येक ने प्यारे गुरुवर के चरणों में शीश झुकाया। और आचार्यवर्य से स्खलनाओं की क्षमा प्रार्थना की। आचार्यवर्य ने उन नत मस्तकों पर मधुरतम आनंददायी हाथ फैलाया और "मिच्छामि दुक्कडम्'' का भावपूर्ण स्वर निकाला।

अंतिम उपदेश : क्षमायाचना एवं क्षमाप्रदान का एक ऐतिहासिक महोत्सव पूर्ण हुआ। शिष्यों ने चाहा कि आचार्यवर्य प्रत्येक को कुछ विशेष उपदेश अंतिम समय की भावना के अनुकूल दें।

प्रत्येक शिष्य आर्चायवर्य की समीप में अनुक्रम से आने लगे। आचार्यवर्य ने प्रत्येक के जीवन एवं शक्ति के अनुसार महत्वपूर्ण उपदेश दिया। यद्यपि यह उपदेश व्यक्ति-व्यक्ति भिन्न था, तथापि उपदेश का प्रधान स्वरूप इस प्रकार था।

१. " भो शिष्यों ! शासन प्रेम को नस-नस में, मांसकी पेशी-पेशी में व्याप्त कर देना।

२. " शासन के सत्यों की प्ररूपणा निरपेक्ष एवं निर्भिक होकर करना"।

३. सत्य प्ररूपण इस तरह से करना कि जिससे संघ में अशांति पैदा न हो। संघ समाधि के लिये व्यक्तिगत अभिप्रायों को कभी महत्त्व नहीं देना। लेकिन शास्त्र से निरपेक्ष तो कभी भी नहीं होना ।"

४. जीवन में कभी भी किसी की निंदा नहीं करना, यदि निंदा करने का प्रसंग आ जाय तो मेरी याद करना और वैसे प्रसंग से बचते रहना।

जो भी ' शासन प्रभावना ' करता हो उसकी बिना किसी संकोच अनुमोदना करना, प्रशंसा करना और यथाशक्ति सहयोग देने के लिये तत्पर रहना।

५. यद्यपि ज्ञान कम पढ़ोगे तो चिंता नहीं है लेकिन श्रद्धा एवं चरित्र में दृढ़तम बनना। ज्ञान यद्यपि जरूरी है; तथापि चरित्र का साधक ज्ञान ही सार्थक है, यह कभी नहीं भूलना।

६. प्रभावक न बन सको तो चिंता हीं लेकिन प्रवचन कुत्सा (निंदा) के हेतु कभी नहीं बनना।

७. मैंने जो भी ग्रंथ निर्माण किया है उन में छद्मस्थता के कारण कोई भी बात गलत हो तो स्वीकार कर लेना। स्वीकार करने से मेरे या तुम्हारे गौरव की हानि होगी यह कभी नहीं सोचना। शासन गौरव ही हम सबका उपादेय है।

अंतिम क्षण : मनुष्य का ही नहीं, देहधारी मात्र का देहांत होता है। अतः अंत कैसा है वही द्रष्टव्य है। कभी जीवन का अंत सारे जीवन से विलक्षण भी पाया जाता है। अत्याचारियों ने भी अंतिम क्षण को सुधारकर ऊर्ध्वगमन किया है। मानवीय जीवन का इहलौकिक महत्व प्रायः जीवन-कार्यवाही से अन्वित होता है, लेकिन पारलौकिक महत्व में अंतिम क्षण की आराधना ही प्रायः प्रधान होती है।

आगे के प्रकरणों में हमने आचार्यवर्य का जीवन देखा है, आपकी अंतिम भव्य आराधना भी देखी, अब उक्त दोनों से भी अपेक्षाकृत अधिक महत्वशाली आपके अंतिम क्षण को हम दर्शायेंगे।

पंचमी के दिन रात को आचार्यवर्य महाराज ने अंतिम " संथारा पोरिसि" पढ़ाई थीं। सूत्र के प्रत्येक शब्दोच्चारण में अनुपम भाववाहिता थी। किसे मालूम था कि यह पोरिसि अंतिम होगी? लेकिन महापुरुषों को अंतकाल का आकलन सहज भाव से हो जाता है। सदैव जागृत महापुरुष और भी जागृत बनते जाते थे। इस रात में सब लोगों ने आचार्यवर्य के पवित्र कर्णों में नमस्कार महामंत्र सुनाया था। छोटे-छोटे लड़कों से लेकर बुड्ढे तक सबने यह अनुपम सौभाग्य को फलदायी बनाया था। अंतिम रात्रि में कम से कम हजारों ने यह लाभ उठाया होगा। रात्रि को लगभग आठ से बारह बजे (८-१२) तक यही कार्यक्रम चला होगा। प्रत्येक के मुख से नमस्कार महामंत्र सुनते-सुनते आचार्यवर्य देव तो अनुपम सुख सागर की तरंगो में मस्त थे। आचार्यवर्य के मुखारविंद पर कृतार्थता की आनंद रेखा स्पष्ट प्रतीत होती थी। जीवन के क्षण-क्षण का उपयोग शासन की सेवा में करनेवाले को अन्त समय में भी क्या व्याकुलता हो सकती है?

अंतिम समय को सार्थक करने के लिये कब से ही आचार्यवर्य सब तरह से सज्ज हो चुके थे। न आपको शिष्यों की चिंता थी, न आपको देह की ममता थी। अजातशत्रु जैसे आप के जीवन में न कोई शल्य अवशिष्ट था। आपके निकटवर्ती शिष्य ने कहा " गुरुदेव । अब मृत्यु राक्षस ने आपको मुख में ले लिया है, दांत दबाने की ही देर है। "

आचार्यवर्य ने कहा " मैं सब तरह से सज्ज हूँ, उनको दांत दबाने दो"। यह दृढतम् निश्चल वाणी में जीवन सार्थकता का मधुर संगीत ध्वनित हो रहा था।

मानो कि आप नियत धर्म का सत्कार करने के लिये साज सजाकर तैयार हो चुके थे। जन-जन को मुदित करनेवाले यह महात्मा मृत्यु को भी अधिक नाराज करना नहीं चाहते थे।

आखिर मृत्यु ने अपनी तीक्ष्ण दाढ़ाओं को स्पंदित किया। ठीक चार बजकर तीस से भी अधिक समय हो चुका था। नमस्कार महामंत्र को मंद स्वर से ध्वनित करता हुआ चतुर्विध संघ निर्निमेष नयनों से आचार्यवर्य की श्वासोच्छ्वासगति को निहार रहा था।

जीवनभर चलते रहे फेफड़े भी अब आराम चाहते थे। पसलियां जीवनभर तक रक्तभ्रमण की आवाज से परेशान हो गई थीं, वे भी अब शांति चाह रही थीं। उर्ध्वगामि आत्मा देह पिंजरे से छूटकर उड़ान करना चाहता था। केवल उपस्थित भक्तगण ही कुछ और सोच रहे थे।

आखिर का एक प्रयत्न से फेफड़ों ने श्वासोच्छ्वास को एक विलक्षण रूप दे दिया। उपस्थित सर्व भक्तगण आचार्यवर्य के प्राण की उर्ध्वगति को देखते थे।

पैर आदि निम्न अंगों को निःश्चेतन करता हुआ प्राणवायु ऊपर ऊपर जाता हुआ स्पष्ट दिखाई देता था। आखिर में नयनों को निस्पंदित निश्चेष्ट करके प्राणवायु देह से विदा हो गया। घड़ी ने ४-४० का समय दिखाया, आर्द एवं अधीर भक्तगणों ने आचार्यवर्य का बार-बार परीक्षण किया लेकिन प्रत्युत्तर देनेवाला, चैतन्यस्वामी गृहदेह को छोड़कर अन्यत्र चला गया था। पुष्पकोमल शिष्य ने वज्र हृदय बनकर आपके देह की परिस्थापनिका (अंतिम विधि) कर के श्रावकों के अधिकार में छोड़ दिया।

श्रावण षष्ठी का प्रभात ४.४० से ही उदित हो गया था। समाचार मिलते ही गली-गली, उपनगर-उपनगर एवं देश-देश जागृत हो गया। लालबाग-बम्बई का उपाश्रय सात बजने के पहले मानव समुद्र बन गया। आपके मृतदेह को देखनेवाले समझाने पर भी मानना नहीं चाहते थे कि उनके सामने अब आचार्यवर्य का निश्चेष्ट देह पिंड ही अवशिष्ट रहा है। लेकिन उन लोगों को भी मन को समझाना पड़ता था और क्रूर आघात को कबूल करना पडता था।

शासन के महारथी की श्मशान यात्रा कैसी थी वह लिखने की न जरूरत है, न पढ़ने की। महान् प्रभावक आचार्यवर्य के कार्य से हम स्वाभाविक ही समझ सकते हैं कि आपकी श्मशान यात्रा कैसी होनी चाहिये।

श्रावण-शुक्ल-षष्ठी के दिन बम्बई की सामान्य जनता को भ्रम पैदा हुआ था कि आज कोई बड़ा प्रधान आया है। लेकिन अत्यंत भव्य जूलुस की बीच में जब आचार्यवर्य के पुनीत देह को देखते थे तब नत् मस्तक हो जाते थे। चैतन्यशून्य देह भी अंतिम काल की महासमाधि के दृश्य को उद्घोषित करता हुआ हजारों दर्शनार्थियों के हृदय में नव आंदोलन पैदा करता था।

बारह बजे से निकला हुआ जूलुस मुश्किल से बाणगंगा के सागर तट पर आपके पुनीत देह को तीन बजे से भी बाद ला सका। आचार्यवर्य के देहपिंड का उचित संस्कार प्रचुर चंदनादि काष्ठों से किया गया। भक्तगण संसार की प्रबल विचित्रता को सोचते-सोचते अग्नि संस्कार के दृश्य को देखते थे। आचार्यवर्य की आत्मा तो कब से विदा, हो चुकी थी। अब यह 'पुद्गल पिंड' देहाकृति भी विलीन होती जाती थी।

दिन-दिन करते हुये आज इस प्रसंग के कितने साल हो चुके हैं। स्मृति कहती है कि नहीं यह तो कल की ही घटना है, लेकिन भ्रांत स्मृति को सत्य कहना भी तो अनुचित है।

एक-भावना : आचार्यवर्य की स्मृति पर अश्रुबिंदुओं का प्रपात स्वाभाविक है। लेकिन अश्रुधारा के बिंदुओं जितने अनल्प गुणी महात्मा के पवित्र जीवन चरित्र

के आलेखन से मुझे एक भी गुण मिल जाये तो मेरा प्रयत्न सफल हो जायेगा।

गुणानुरागी आचार्यवर्य का देह परिवर्तन भले हो चुका हो, पर आत्मदल परिवर्तित नहीं हो सकता है। हमारी शासन प्रभावना एवं चारित्र आराधना देखकर आप अवश्य पुलकित बनेंगे और हर्षित हृदय से अवश्य कृपा प्रदान करेंगे।

गुणानुरागी अनुपम योगिराज महात्मा पू. गुरुदेवेश आचार्य भगवंत विजय लब्धिसूरीश्वरजी महाराज के पवित्र चरणारविंद में अनंत वंदनावली.

सूरीश्वर के स्मृत्यार्ह संवत्सर और स्थान

जन्म स्थल : **बालशासन**

समय : **वि० सं० १९४०**

संसार प्रपंच से मुक्त होने का सकल पुरुषार्थ भागवती प्रवज्या अंगीकार : **वि० सं० १९५७**

*

वाद विजय के स्थल और संवत्

प्रथमवाद विजय : **१९६५ लुधियाना**

द्वितीयवाद विजय : **१९६६ कसूरग्राम**

तृतीयवाद विजय : **१९६७ मुल्तान**

चतुर्थवाद विजय : **१९७३ नरसंडा**

पंचमवाद विजय : **१९७४ बड़ोदरा**

जैन रत्न व्याख्यान वाचस्पति पद प्रदानः- **१९७१ ईडर**

आचार्य पद प्रदान : - **१९८१ छांणी**

स्वर्गगमन :- **२०१७ श्रावण शुक्ल पंचमी (बम्बई)**

---*---

श्रमण संस्कृति के गायक-लब्धिसूरि

रावलमल जैन ''मणि''

भगवान् महावीर की विशाल श्रमण परम्परा में मूर्धन्य महाकवि,वात्सल्य मूर्ति, करुणा व समता के ज्योतिर्धर, शासन दिवाकर, मूज्यपाद श्रीमद् विजयलब्धिसूरीश्वर जी महान् जैनाचार्य एवं भारतीय संत के रूप में प्रतिष्ठित हैं। आपकी वात्सल्यता, उदार मन एवं विशालता, सहज सरलता एवं हृदयस्पर्शी विद्वत्ता से हजारों हजार भक्तिवंत जनमानस प्रभावित था। लाला लाजपतराय, महात्मा गांधी, डॉ. राधाकृष्णन, काका कालेलकर आदि राष्ट्रनेता भी इस महान् विभूति की गुणवत्ता के कायल थे। प्रवाहमान भक्ति, समता, संयम, आत्मकल्याण, परोपकारी, गुणानुराग और आनंद के शाश्वत संदेश को विश्व मानव के लिये सुलभ करने में सूरिदेव ने जो विशिष्ट गौरवशाली योगदान दिया है, वह अमूल्य धरोहर है।

यह महान् विभूति मूर्धन्य महाकवि एवं कविकुलकिरीट के रूप में प्रतिष्ठित है। अपनी काव्य एवं संगीतमयी सरसपद रचना के कारण उनका क्षेत्र धर्म-संप्रदाय और भाषा की सीमाओं को तोड़कर समस्त जन मानस में व्याप्त हो गया है। आज लब्धिसूरिदेव के गेय पदों को बड़े उल्लास के साथ भगवद् भक्ति में गाया जाता है। राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने सूरिदेव की काव्य साधना से प्रभावित होकर कहा था- **''भक्ति की रसात्मक वाग्धारा को पूज्य आचार्य लब्धिसूरि ने जनमानस के व्यापक धरातल पर अवतरित कर संगीत और माधुर्य से मंडित कर साहित्य को उपकृत किया है।''**

" सूरिदेव लब्धि आचार्य की साधना को पढ़ा है, देखा है उन्हें स्वयं गाते हुए और उसमें गोते लगाते हुए। उन्होंने अपनी वैराग्यमयी ज्ञान साधना को सगुण भक्ति का रूप दिया, भक्ति को सरस काव्य का कलेवर प्रदान किया और काव्य को श्रुति मधुर संगीत के आवरण में सहृदय संवेदय बनाया " कवि रामधारी सिंह "दिनकर" की यह अभिव्यक्ति उस महात्मा के चरणों में विनम्र श्रद्धांजलि है।

श्रमण संस्कृति के अमर गायक श्री लब्धि सूरीश्वर जी को जैन संस्कृति के अध्येता एवं व्याख्याकार के रूप में जो प्रणम्यता प्राप्त हुई है वह उनकी सतत् साधना और समर्पित काव्य साधना का सही परिणाम है। भाव और भाषा की इकाई में वे सम्यकता को सम्बल बनाकर आगे बढ़ते रहे और इसी कारण उनका काव्य तत्त्व अत्यंत हृदयग्राही एवं सुलभ बन सका।

महान् विभूति की प्रवाहमान भक्ति, समता, संयम, आत्म कल्याण, परोपकार, सेवा, गुणानुराग, करुणा व समता और आनंद के शाश्वत स्रोतों का

व्यक्तित्व कल्याणपरक है। आत्म आनंद का वह कौन सा तत्व है जिसके कारण आज अशांत ब्रम्ह सरोवर शांत और सत् चित् आनंदमय हो सके? यह एक यक्षप्रश्न युगीन संदर्भों के साथ हर युग में खड़ा हो जाता है और तब कपिलवस्तु के राजप्रासाद अनाकर्षक नजर आते हैं। यौवन की आंखों का अनुराग ढ़ल जाता है और निकल पड़ता है अपनी एकांकी यात्रा में कोई राजकुमार, कोई वर्धमान, कोई और--- वीतरागी बनने।

उसी आनंद उत्स की यात्राओं में साधना, तप और संयम के अनुष्ठानों को पूरा करता हुआ एक मानवीय चरित्र की विलक्षता में प्रतिष्ठित हो जाता है- जहाँ न तो कोई प्रश्न खड़ा हो सकता है और ही कोई उत्तर। न कोई तर्क है और न वितर्क - इसी साधकीय वृत्ति में सहजता से मिलता है अंदर का विमल प्रकाश, एक शरदीय ज्योत्सना, अक्षरों के सुंदर पुष्प और उनकी सुरभित मंगलमय क्यारी। आचार्य प्रवर के सौम्य दर्शन में, उनकी वाणी में, पद में, गीत में, अक्षर में, उपदेश में, उसी आत्मा के दर्शन होते हैं। शब्द की इस वासुदेव यात्रा का निरूपण यथा संदर्भ शिल्पित हुआ है। अध्यात्मपरक यात्राएं मानस के अंत:पृष्ठों को उजागर करती हैं। अनादि अनंत संसार चक्र में परिभ्रमण करती ऐसी आत्माओं को भवबंधन से पार ले जाने वाला पदम पराग इस ब्रम्ह सरोवर में शताब्दी पुष्प की तरह खिलता है, सुरभित होता है और अपना विमल पराग बिखेर कर दाहक जीवन को शीतल करता है।

आचार्यवर्य का प्रखर व्यक्तित्व एवं कृतित्व इसी चिरंतन सत्य का आग्रह था। जीवन के चिंतन कक्ष में जीव जीवन से इतर मानवीय कल्याणपरक जो भावनाएं साधु-संतों की परम्परा में दिखाई देती हैं। उनका एक मात्र कारण है उनकी अपनी विशिष्टता, अलौकिकता जो स्वमेव हमें कथ्य की भूमिका के लिए प्रेरित करता है।

लब्धिसूरिदेव ने मानवीय सभ्यता और संस्कृति के उत्थान में आदमी के अंदर की कल्मषता को झांका है और उसे दूर करने का त्रिपार्श्वीय सूत्र सम्यक् दर्शन की भूमिका दी है। सम्यक् ज्ञान का अवसर दिया है और चारित्र की सम्यकता देकर एक विमल प्रकाश दिया है उनके पदों में स्तवनों के स्तावक हैं जिनमें भक्ति का सौरभ है और सत्‌चित् आनंद देने वाला सच्चिदानन्दीय सौरभ है। जैन संस्कृति और जैन संस्कारों के परिपथ में परिभ्रमण करते हुए ये स्तवन, ये स्तोत्र, ये भावों की सुरभित माला मनुष्य को मानवता के उदात्त सोपानों में पहुंचाने में सहायक हुए हैं। इन पदों में है लालित्य और है संगीत की आत्मा।

रागों में गुम्फित ये स्तवन वीतरागी हैं इनमें वैराग्य का दर्शन है और ब्रम्हानंद सहोदर संगीत की मधुरिम पग ध्वनि। इन पदों की आत्मा के तल में एक विमल प्रकाश से आभासित समग्र संसार एक ऐसे अवर्णनीय दर्शन की कथ्य भूमि को सहज ही देख सकता है। सूरि जी के गीतों में शाश्वत भारतीय वाङ्मय के आदर्श एवं अनादि भाव हैं।

श्रमण संस्कृति के अमर गायक श्री लब्धिसूरि ने सोये हुए मानव के अंदर जो आत्मा का अरविंद है उसे जगाया है और बिखेरी है प्रकाश की तेजस्विता। उस महान् युग पुरुष को शत्-शत् वंदन।

साधना, ज्ञानार्जन एवं लोक सेवा से पूर्ण जीवन

डॉ० के० सी० जैन

पू.आचार्य श्री लब्धि सूरीश्वर जी की साधना एवं ज्ञानार्जन लोक सेवा से परिपूर्ण रहा और इसी अवस्था में उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक सारे भारत वर्ष में धर्म के प्रसार से देश को एक सांस्कृतिक सूत्र में बांधा। शांति, अहिंसा एवं धार्मिक सद्भावना के प्रयासों एवं गुणानुराग को निष्ठापूर्वक स्थापित करने के लिये समर्पित रहे।

अपनी संयम, साधना एवं आराधना के बल पर असीमित शक्ति प्राप्त कर इस योगी महापुरुष ने अपने अनुयायियों को जीवन बल प्रदान किया। श्री हीराचंद जी चोपड़ा के सुपुत्र के अपाहिज पैरों ने गुरुदेव भगवंत के फोटो से गिरे वासक्षेप से नवजीवन पाया। ग्यारह वर्ष बाद वह पुनः चल पड़ा। डॉ० प्रफुल्ल जैन का बार-बार सर दर्द होते शोध-प्रबंध का गुरु श्री की कृपा से पूर्ण होना। डॉ० कल्ले कहते हैं " मैं शल्य चिकित्सक हूँ, प्रारंभ में मेरे हर आपरेशन फेल हुए। मैं निराश हो चुका था कि एक दिन भाई श्री रावलमल जी जैन 'मणि' से मुलाकात हुई जिनके नेतृत्व में भव्य जिन भुक्ति महोत्सव आयोजित हुआ था। मणि जी से परिचय हुआ। अपनी व्यथा बताई, विचारों का आदान-प्रदान हुआ। इनके निर्देशन का पालन किया। फिर एक दिन साहस के साथ पुनः आपरेशन टेबल पर जटिल आपरेशन का प्रारंभ " ॐ ह्रीं नमो आयरियाणं श्रीमद्लब्धिसूरि गुरुभ्यो नमः " स्मरण के साथ किया और पहली बार सफल रहा फिर तो मेरा यह क्रम ही बन गया।" डॉ० कल्ले जो एक ख्यात्नाम शल्य चिकित्सक हैं ने भी एक विशेष स्थिति निर्माण के अवसर पर सूरिदेव की कृपावंता प्राप्त की। ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो मेरे अपने अनुभव में आए। पू. सूरिदेव के जीवन चरित्र का मैंने यथासमय अध्ययन किया और उनके जीवन की सार्थकता का सम्मानीय परिचय मिला।

पू गुरुदेव का अन्तःकरण त्याग, संयम और अपरिग्रह जैसे गुणों की साधना से निर्मल और पवित्र हो चुका है। चिन्तन में उत्कृष्टता और आचरण में आदर्शवादिता से वे ओतप्रोत थे। गुरु की निष्काम सेवा के साथ अंतराल में श्रद्धा, मस्तिष्क में प्रज्ञा और आचरण में निष्ठा का समावेश उनका जीवन था। पूज्य श्री गुण के समुद्र थे कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि परोपकारिता को ही इस तरह उन्होंने प्रवाहित किया था मानो उसी के लिये उन्होंने जन्म लिया हो। पूज्य श्री का सम्पूर्ण जीवन दर्शन युग संधि का प्रभात पर्व सा प्रतीत होता है।

प्रखर तेजस्वी वक्ता : संवत् १९५१ के वर्षावास की समाप्ति के बाद पुण्य प्रतिभा के धनी आचार्यश्री कमलसूरीश्वर जी म. ने ईडर के कुंभारियाजी तीर्थ यात्रा संघ को निश्रा प्रदान की और वहां से माणसा, पेथापुर, बीजापुर आदि स्थलों में धर्मोपदेश देते हुए कपडवज पधारे जहां १९ वर्षीय मुनिश्री लब्धिविजय जी को पहली बार गुरु कृपा से व्याख्यान पीठ की आसंदी मिली। इस पवित्र आसंदी से मुनिश्री ने भाव-दया की सुंदरतम् व्याख्या की जिसे सुनकर श्रोता अत्यंत मुग्ध हुए और वहीं से मुनिश्री ने अपने को शासन का उद्योतकार होने का परिचय दिया। मुनिश्री के कंठ की मधुरता एवं स्वर की बुलंदता, विषय का रोचक, सरल व सहज प्रतिपादन आकर्षक था। दीक्षा पर्याय के दूसरे ही वर्ष में अपनी अगाध गुरु भक्ति, ज्ञानार्जन एवं संयम धर्म के विकास में उन्नतता पर मुनिश्री लब्धिविजय जी ने अपना हस्ताक्षर किया, बड़ोदरा के चातुर्मास में मुनिश्री ने आगम अध्ययन, सारभूत तत्व बोधक प्रकरणों का अभ्यास किया। इन्हीं दिनों प्रकरणों के जानकार, द्रव्यानुयोग के अनुभवी गोकुल भाई के साथ तत्व चर्चा का प्रसंग चलता और तत्व ज्ञान आदि अनुभवों का आदान-प्रदान महत्वपूर्ण रहा। मुनिश्री की धारणशक्ति, कुशाग्रबुद्धि और तीव्र तर्क प्रतिभा के परिचय से वयोवृद्ध गोकुल भाई को भारी आश्चर्य हुआ। पारखी गोलकुल भाई ने पू. आचार्य श्री कमलसूरीश्वर जी म० से बाल मुनिश्री लाब्धि विजय जी की कुशाग्रता से अपनी प्रभावकता की खुले हृदय से चर्चा की।

आनंद बाहर नहीं : गोमती के किनारे १८ मंदिरों से शोभित लखनऊ नगर में मुनि श्री लब्धिविजय जी ने एक गोष्ठी में धनंजय मिश्रा के प्रश्नोत्तर में कहा भाई आनंद की प्राप्ति बाहर से नहीं बल्कि स्वयं के अंदर में झांकने से हो सकती है। जितना हम आत्म चिंतन करेंगे उतना ही सच्चा आनंद अनुभव किया जा सकेगा।

हर क्षण शुभ है : अजीमगंज में मुनिश्री लब्धिविजय जी के तत्वज्ञान से परिपूर्ण व्याख्यान में एक बार बाबू धनपत सिंह जी के परिवारिक सदस्य सर सुरपत सिंह जी ने प्रश्न किया " पूज्य श्री, धर्मानुष्ठान का कौन सा मुहुर्त, अवसर शुभ होता है।" यह उनका एक स्वाभाविक प्रश्न था। मुनिश्री ने बड़ी ही सहजता से कहा "अवसर की तलाश में मत रहो, बुद्धिमानों के लिए हर समय अवसर है। मुहूर्त निकालने, साथी ढूंढ़ने और सहारा बनाने में समय न व्यर्थ न गंवाओ। प्रत्येक क्षण शुभ है। अशुभ है तो केवल मनुष्य का संशय जो आशा निराशा में डोलते रहता है। आज का दिन हर भले काम के लिए उपयुक्त है। जो शुभ है उसे शीघ्र किया जाना चाहिए। देर तो उसमें करना चाहिए जो

अशुभ है जिसे करते हुए अंत:करण में भय और संकोच का संचार होता है। मुनिश्री का प्रवचन सभासदों को झकझोर देने के लिए काफी था।

रायबहादुर बद्रीदास जी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए सूरिं पुंगव से कहने लगे " आपश्री के लघु शिष्य श्रीमद् लब्धिविजय जी म. के व्याख्यान की शैली उनमें विविध सूक्ष्म विषयों को स्थूल और सरल रीति से समझाने की अजोड़ बुद्धि तथा सभा को प्रतिपादित विषय में सराबोर कर देने की चुम्बकीय शक्ति है।

जिंदगी जब बदली : पंजाब के कसुर ग्राम में मुनिश्री का सं० १९६५ में चातुर्मास हुआ। निकटतम ही एक ग्राम है बधीयाना जहां जैनों की आबादी कम है, मुनिश्री का चातुर्मास के पूर्व यहां आगमन हुआ। लगातार प्रवचनों के क्रम में एक दिन एक सभा में एक मुस्लिम भाई उठ खड़ा हुआ "साहब, आज से मैं जुआ नहीं खेलूंगा", "दूसरे ने कहा आज से मैं मांसाहार नहीं करूंगा", तीसरे ने कहा "अभी से मैंने मद्यपान त्याग दिया।" एक के बाद एक, सैंकड़ों लोग परिवर्तित हृदय से मुनिश्री द्वारा कराए गए आत्मानुभुति से पूज्यश्री के चरणों में निहाल हो रहे थे।

सच्चे समाज सुधारक : मुनिश्री लब्धि विजय जी के मानव धर्म, शिक्षा, अहिंसा, विश्वशांति, सतसंग, सच्चा सुख आदिक विषयों के प्रवचनों को पंजाब और दिल्ली के समाचार पत्रों ने महत्वपूर्ण स्थान दिया। अम्बाला के पंजाब कांन्फ्रेस में मुनिश्री के प्रवचन को सम्पादकीय टीप के साथ समाचार पत्रों ने प्रकाशित करते हुए अपनी प्रसन्नता व्यक्त की थी कि " जैन महात्मा श्रीमान् लब्धिविजय जी महाराज आज के सच्चे समाज सुधाकर हैं।"

दिल्ली में भव्य स्वागत : पंजाब की जनता को धर्म प्रवृत्ति में प्रगतिशील बनाने का सुकृत्य करते हुए मुनिश्री लब्धिविजय जी के दिल्ली प्रवेश पर अभूतपूर्व स्वागत हुआ। संवत् १९७० का वर्ष दिल्ली में मुनिश्री लब्धि विजय जी को पाकर गौरवान्वित हुआ। जैनेतर विद्वानों, राजनयिकों, अधिकारियों के अति आग्रह पर मुनिश्री के अनेक सार्वजनिक प्रवचन हुए। विद्वानों, पंडितों और विविध विषयों के विद्वानों का मुनि लब्धिविजय से विचारों का आदान प्रदान होता।

गद्गद् हुए राजर्षि : मुनिश्री लब्धिविजय जी के विचारों से प्रभावित, जन-जन में उनकी चर्चा को सुन लब्धिप्रतिष्ठ राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन मुनि श्री के दर्शनार्थ आ पहुंचे। किशनचंद जी चोपड़ा ने परस्पर परिचय कराया। टंडन जी मुनिश्री के विचारों विशेषकर भारतीय भाषाओं के विकास की उनकी ललक देख अत्यंत प्रभावित हुए। प्रथम भेंट में मुनिश्री ने टंडन जी को ग्यारह श्लोक

का भारतीय संस्कृति की पावनता पर कविता लिखकर भेंट की। फिर तो अनके साहित्यकों ने मुनिश्री के दर्शन किए और उनकी कवित्व शक्ति का परिचय पाया।

इतिहास की पुनरावृत्ति युवक का वैराग्य : जैन इतिहास में ऐसे अनेक प्रसंग आए हैं जब तत्वज्ञान एवं धर्मबोध सुनकर अनेक आत्माओं ने सांसारिक सुखों का त्याग कर दिया और स्व-पर कल्याण मार्ग प्रशस्त किया। संयम की सफल आराधना द्वारा संयम धर्म के विकास में उन्नत बनकर प्रेरक गाथाएं जोड़ी हैं। इसी शृंखला में ३० वर्षीय मुनिश्री लब्धिविजय जी के हृदयवेधक उपदेश सुनकर रामा थियेटर, दिल्ली की प्रवचन सभा में दौलत राम नामक युवक ने निवेदन किया कि " पूज्य गुरुदेव श्री, मुझे भगवती दीक्षा प्रदान कीजिए और अपने चरणों की सेवा से मेरा उद्धार कीजिए। सभी स्तब्ध रह गए। हजारों नेत्र अपलक निहार रहे थे उस युवक को, जिसके हृदय से वैराग का अंकुर भावना रूप जल से सिंचित हो प्रवाहित हो गया। सभा मुनिश्री की अमोघ देशना के जय जयकार से गूंजित हो उठी। मुनिश्री ने युवक के हृदय में नवपल्लवित आकांक्षा का अध्ययन किया और कुछ समय बाद दीक्षार्थी को परिपक्वता के साथ सिकन्द्राबाद (आग्रा) में धूमधाम से दीक्षा प्रदान की और उनका नाम श्री लक्ष्मण विजय रखा गया जो आगे चलकर आचार्यवर्य श्रीविजय लक्ष्मण सूरि के नाम से भव्यतम शासन प्रभावना से विख्यात हुए।

सच्चे धर्म प्राण मुनि के प्रवचनों से प्रभावित अनेक आत्माओं ने उनसे दीक्षा अंगीकार की उनमें आचार्यश्री भुवनतिलक सूरि, आचार्यश्री जयंतसूरि, निपुणविजय जी, आचार्यश्री नवीनसूरि जी, प्रवीणविजय जी, शुभविजय जी, नंदनविजय जी, योगीन्द्रविजय जी, महिमाविजय जी, पदमविजय जी, आचार्यश्री विक्रमसूरि, रत्नाकरविजय जी, नेमविजय जी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय रहे हैं।

जीवन भाई जब जयंत विजय बने : डभोई में जीवन भाई फूलचंद के विवाह की तैयारी चल रही थी। वैवाहिक गीत प्रारंभ हो चुका था। इन्ही दिनों पू० मुनिश्री लब्धिविजय जी म. का चातुर्मासिक प्रवचन का प्रवाह संख्या बद्ध लोगों को आकर्षित किये हुए था। पूज्य श्री के ओजस्वी वाणी से प्रभावित जीवन भाई ने मनुष्य जीवन की सार्थकता हेतु याचना निवेदित किया। पूज्यश्री ने संयम की कठिनता, व्रत पालन की दुष्करता और बाईस परिषहों से जीवन भाई को अवगत कराया। जीवन भाई तो वैराग्य रंग में रंग गए थे। जीवन भाई की मातृश्री बहुत वृद्ध एवं धर्मपरायण थीं। पितृ सुख से तो वे बाल्यावस्था से ही वंचित

थे। मातृश्री ने कौटुम्बिक जनों के साथ आज्ञा प्रदान कर दी। बोरसद में पू. मुनिश्री के प्रवास के दौरान जीवन भाई अपनी चिरंजीवी इच्छा को मूर्तरूप देने आग्रही बने। दीक्षा की तैयारी प्रारंभ हुई किन्तु कतिपय लोगों ने विवाद खड़ा कर दिया। शांत प्रकृति, सरल आशयी पूज्य मुनिश्री ने दीक्षा स्थगित कर दी। दीक्षा के कार्य में विघ्न की खबर पूज्य मुनिश्री के प्रवचनों से प्रतिबोधित श्रद्धावंत आशा भाई बकोर भाई पटेल को हुई तो सारी वस्तुस्थिति की जानकारी पूज्यश्री से प्राप्त की और आग्रह कर वे महाराज श्री को गांव बाहर अपने बंगले में ले गए। पटेल ने युक्ति युक्त कार्यवाही की और फिर धूमधाम से जीवन भाई ने दीक्षा ग्रहण की। अब जीवन भाई मुनिश्री जयंतविजय हुए पू. मुनिश्री के शिष्य।

कुछ स्थिरता के बाद पू. मुनिश्री ने बोरसद से बिहार किया जब वे निकटवर्ती ग्राम पहुंचे तो बोरसद के जैन-जैनेतरों ने पुनः तुफान खड़ा कर दिया। धर्मपरायण माता लोगों की शांति के लिए जयंतविजय जी को बोरसद ले आईं। जयंतविजय जी किंचित भी विचलित नहीं हुए। वे लोगों के साथ गांव में आ गए और उन्होंने चार आहार का त्याग कर दिया जब तक कि वापस उन्हें उनके गुरु श्री के पास नहीं पहुंचा दिया जाता। सारे प्रयासों की विफलता के बाद विघ्नकारों ने अपने हथियार डाल दिए मुनिश्री जयंत विजय जी के दृढ़ निश्चय के सामने। अंततः वे ही धूमधाम से सोल्लास गाते-बजाते मुनिश्री जयंतविजय जी को पूज्यश्री के पास पहुँचा दिया और अपने दृष्कृत्यों के लिए क्षमा याचना की। सारा वातावरण धार्मिकता से ओतप्रोत हो उठा।

आचार्यश्री की विशालता : संवत् १९८८५-८६ की बात है। पाटण के कुछ विद्वान् जैनेतर धर्मप्रेमी आचार्यश्री लब्धिसूरि के दर्शन करने और उपदेश सुनने की आकांक्षा से समवेत होकर आये। उस समय आचार्यश्री की गंभीर धर्म चर्चा चल रही थी। अनेकानेक लोग उस अमृतपान में तन्मय थे।

आचार्यश्री ने आगत ग्रामवासियों को देखा और चर्चा रोक दिया, भोगीलाल डाह्याभाई से बोले भोगी भाई। उठो सामने ब्राह्मण मंडली आ रही है, उन्हें समुचित सत्कार के साथ ले आओ।

भोगीलाल भाई दौड़कर उपाश्रय के बाहर आए, उनकी कल्पनानुसार वहाँ कोई ब्राह्मण नहीं था मात्र कुछ शिक्षकादि तितर-बितर आ रहे थे। वे वापस आचार्यश्री के पास लौट आए और कहा " साहेब, इन आगन्तुकों में एक भी ब्राह्मण नहीं है। ये सभी नौकरी-चाकरी करने वाले शिक्षक व अन्य जाति के लोग हैं।

आचार्यश्री गंभीर हो गये और बोले जो सदाशयता के प्रति श्रद्धावान है

वही ब्राह्मण है। ये लोग श्रेष्ठ प्रयोजन के लिए भाव युक्त होकर आये हैं। ये इस समय तो ब्रह्मण हैं। उनका समुचित सत्कार होना चाहिए।

आचार्यश्री की विशालता से सभी गद्‌गद् थे।

किसानों के साथ आचार्यश्री : आचार्यश्री की अनेक विविधताओं में उनकी मिलन-सारिता का गुण असाधारणता लिए हुए था। संवत् १९९१ की बात है आचार्यश्री बीकानेर की ओर प्रयाण कर रहे थे। रास्ते में ग्रामवासियों का एक दल मिला जो आपस में भगवान् की निंदा कर रहे थे, किसी को कुछ किसी को कुछ देने के लिए लोग भगवान् को पक्षपाती ठहरा रहे थे। आचार्य श्री ने भी इनकी बातें सुनी। वे हंसते हुए उन्हें साथ ले आगे बढ़े। गांव के पास ही एक बगीचा मिला जिसमें कई प्रकार के फूल थे जिनसे खुशबु आ रही थी वहीं उससे लगा एक खेत था जिसकी फसल से बदबू आ रही थी। आचार्यश्री ने कहा जमीन बहुत बुरी है। किसी को क्या, किसी को क्या देती है, उसका पक्षपात देखा। लोंग बोले- नहीं, यह धरती का नहीं बोने वालों के कृत्यों का फल है।

आचार्यश्री ने हंसते हुए कहा-" मनुष्य का कर्म भी एक प्रकार का खेत है उसमें जो जैसा बोता है वह वैसा काटता है।"

अपूर्व सहनशीलता : आचार्यश्री लब्धिसूरि जी में गजब की सहनशीलता थी भले ही वे शाररिक कष्ट से भी पीड़ित क्यों न हों। संवत् १९९२ की बात है सादड़ी में चतुर्मास था। पर्युषणा के पूर्व उन्हें एक फोड़े ने आ घेरा और धीरे-धीरे बढ़ता ही गया किन्तु आचार्यश्री ने उसकी परवाह नहीं की और उनकी दैनिक प्रवृत्तियां चलती ही रहीं। भक्तों ने डाक्टरों द्वारा आचार्यश्री से कहलवाया कि उपचार और आप्रेशन की इजाजत दे दीजिए। आचार्यश्री ने हंसते हुए कहा " अशुभ कर्मों के नष्ट होते ही सब ठीक हो जाएगा चिन्ता क्यों करते हो। जल्दी क्यों ठीक नहीं होता, यह तो आर्तघ्यान है।" उन्होंने किसी प्रकार के उपचार को स्वीकार नहीं किया। एक सुबह, व्याख्यान पीठ से जैसे ही आचार्यश्री अलग हुए, फोड़े का अंत हुआ और स्वास्थ्य लाभ उन्हें मिला।

आचार्यश्री लब्धिसूरिजी सहिष्णुता, सहयोग, सहृदयता, स्नेह, सत्कार, सद्‌भावना और साधार्मिक भक्ति के प्रोत्साहक थे, प्रेरक थे। बात सन् १९५३-५४ की है। श्री शत्रुंजय गिरिराज की यात्रा से आचार्यश्री वापस लौट रहे थे। तलेटी के पास गिरिराज के यात्रालुओं को भाता दिया जाता है। कुछ लोगों में विवाद चल रहा था। एक भाई ने भाता की जोरदार शब्दों में निंदा कर दी। ये शब्द पास से ही जा रहे आचार्यश्री ने भी सुनी। आचार्यश्री ने विवाद ग्रस्त लोगों को बुलवाया और उन्हें शांत कर उपाश्रय आने को कहा। दूसरे दिन आरीसा

भवन के सभागार में प्रवचन चल रहा था। प्रवचन का विषय था " साधर्मिक भक्ति " जिसमें सप्तस की प्रभाविक व्याख्या करते हुए आचार्यश्री ने- निंदा और वह भी साधार्मिक भक्ति की निंदा-की पुरजोर चर्चा की। व्याख्यान पूरा भी नहीं हुआ कि कल के व्यक्ति की आंखों से अश्रुधारा बह चली और पश्चाताप करते हुए क्षमा याचना की। अजीबोगरीब दृश्य उपस्थित हो गया।

आचार्यश्री ने अपने इस सारगर्भित प्रवचन में स्वामी वात्सल्य की महत्ता बताते हुए कहा था कि न जाने कब कौन सा दाना किस पुण्यात्मा को मिल जाए और वह आत्मा कल्याणकारी हो जाए।

भक्ति के कायल आचार्यश्री : छोटा हो या बड़ा, धनी हो या गरीब, सामाजिक परिभाषा के प्रचलित परिवेश में कुछ हो आचार्यश्री लब्धिसूरि सदैव गुणों की, विचारों की, सहृदयता की, भावना की, सद्भक्ति की बिना किसी भेदभाव के सम्मान करते थे, अनुमोदना करते थे। पालीताणा में एक बार आरीसा भवन में स्व० मनरूपमल जी दूगड़ और मांगीलालजी (दुर्ग) ने अपने श्रद्धापुंज में परिवारजनों के बीच पधारकर चरण रज से पावन करने का निवेदन किया। निवेदन स्वीकार हुआ। आचार्यश्री अपने समस्त शिष्य परिवार के साथ पाटणवाली धर्मशाला में पधारे और चरण स्पर्श से पावन किया। हजारों हजार कानों ने मंगलाचरण से तृप्ति पाई। गुरु पूजन एवं संघ पूजन का दृश्य भक्ति के कायल आचार्यश्री के विशाल गुणवत्ता का गान कर रहा था।

जैन रत्न व्याख्या वाचस्पति : पूज्यश्री विजयलब्धि सूरीश्वर जी म० के पंजाब से धर्म प्रभावना की सफलतम उपलब्धियों से ईडर पधारने पर सूरि भगवंत कमलसूरीश्वर जी म० की आज्ञा व निश्रा में जैन रत्न व्याख्यान वाचस्पति से श्री संघ ने सम्मानित किया। इस प्रसंग पर मुनिश्री मानविजय जी ने जोरदार वक्तव्य दिया तथा पूज्यश्री ने जो आभार प्रदर्शित किया अक्षरशः यहां प्रस्तुत है।

मुनि लब्धिविजय जी। आज श्री जैन श्वेताम्बर श्री संघ ने जो मानपत्र दिया है सो इन्होंने गुणानुराग से यह काम करके अपनी फर्ज अदा की है। योग्य श्रावकों का कर्तव्य है कि हमेशा योग्य गुणों को देख भविष्य में उन्नति कारण बनाने के लिए उसकी मदद करें। जिस काम में योग्य व्यक्ति की कदर नहीं होती वह काम कभी उन्नति के शिखर पर चढ़ नहीं सकती है। इसलिए यहां उपस्थित श्री संघ का कर्तव्य अति श्रेष्ठ है। परन्तु पद को लेने वाला पद को प्राप्त करके पदानुकूल कार्य करता रहे तभी पद प्रदाताओं का परिश्रम सफल हो सकता है। इसलिये जैन रत्न व्या० वा० के पदारुढ़ मुनि लब्धिविजय जी, मैं तुमको यह

हित और मित शब्दों से कहता हूं कि तुम यह पद श्री संघ की तरफ हमेशा रखना। साधु मंडल में तथा सुश्रावक वर्ग में जिस प्रकार प्रेम भाव बढ़े ऐसे काम करना। मांसाहारी जीवों को मांसाहार से जिस प्रकार असीम परिश्रम उठाकर पंजाब देश में तथा मुल्तान आदि शहरों में हटाते रहे हो इसी प्रकार भविष्य में भी जहां तहां तुम्हारा विहार होवे वहां मांसाहार का खंडन करके शुद्ध दश धर्म का प्रचार करना। जैसी तुम्हारे में इस समय विद्या तथा शांति देखने में आती है इससे भी अधिक इस पदवी को प्राप्त कर रखना योग्य है। मतलब अपने जीवन को ज्ञान की उन्नति द्वारा पूर्ण शांतिमय बनाकर अधर्म मार्ग का निकंदन करने में तथा वीतराग के शासन की उन्नति करने में हमेशा दत्तचित्त रहना। परन्तु जहां पर धर्म से विरुद्ध अर्थात् अधर्म की पुष्टि होती होवे तथा धर्म शास्त्र से विरुद्ध कोई भी पुरुष प्ररूपणा करता हो, ऐसे स्थानों में शक्तिवान मनुष्यों को चुपकी पकड़ कर शांति को धारण कर बैठना अयोग्य है। क्योंकि शास्त्रकार भी लिखते हैं कि-

धर्मध्वंसे कृपालोपे स्वसिद्धान्तार्थ-विप्लवे ।
अपृष्ठे नापि शक्ते न वक्तव्यं तन्निषेधकम् ।।

पूज्यश्री लब्धिसूरि जी : पूज्यश्री गुरुजी महाराज तथा पूज्य मुनिमंडल और अन्य सद्गृहस्थों :-

" मेरे गुरुवर्य ने आज मुझको जो उपदेश देकर कृतार्थ किया है इस बात का मैं अत्यन्त ऋणी हूँ और साथ ही आप सर्व सज्जनों के समक्ष यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो-जो बातें शासन की उन्नति के विषय में फरमाई हैं उन बातों को यथाशक्ति पालन करने के लिये जीवन पर्यन्त तत्पर रहूंगा।"

प्रिय सज्जनों,

"मुझको आज मानपत्र देने के लिए आप लोगों ने एक विराट सभा भरी है। जिसके अंदर बाहर के उत्साही लोग तथा नगर निवासी जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्री संघ और दिगंबर जैन व जैनेतर सभी समाज के मनुष्य प्राय: विद्यमान हैं।

सभा के प्रत्येक मनुष्य में असीम उत्साह प्रकाशमान हो रहा है शा. हेमचंद भाई छगनलाल तथा अन्य सद्गृहस्थों ने मेरे विषय में जिन शब्दों से स्तुति की है तथा मानपत्र में मेरे लिये जो शब्द लिखे गये हैं मैं अपने आपको उंन बातों के योग्य नहीं देखता हूँ परन्तु जिस संघ रूप तीर्थ को श्री तीर्थंकर देव भी देशना के समय "नमो तित्थस्थ" कहकर नमस्कार करते थे वह तीर्थरूप श्री संघ मानपत्र में मिथ्या प्रशंसा भी नहीं कर सकता। दीर्घ विचार करने से मालूम होता है कि

शायद मानपत्र में लिखे हुए गुणों का अंश मेरे में होगा और आप लेखक तथा अनुमोदक शुद्ध गुण श्रद्धालु और सदाचारी होने से अत्यन्त शुद्ध बुद्धि के धारक होंगे, इस शुद्ध बुद्धि ने आप लोगों के लिए उच्च जाति के लिए सूक्ष्म दर्शक (दुर्विन्द) का काम दिया मालूम होता है अर्थात् मेरे परमाणु मात्र गुणों को आपकी बुद्धि ने पर्वत तुल्य देखा और झट जैन समाज में जाहिर कर दिया कि अमुक व्यक्ति अमुक गुण को रखता है। आपकी इस उद्घोषणा में मैं सर्वथा सहमत नहीं हूँ तथा पितृ गुरु आज्ञा और श्रीसंघ के आग्रह को सादर स्वीकृत करता हूँ और शासन देव से प्रार्थना करता हूँ कि कर्म क्षयोपन में निमित्त कारण बनकर वह मुझको भविष्य में इस पद के योग्य बनावें।''

लब्धिसूरि की रचना में भक्ति सौरभ

-रावलमल जैन "मणि"

भारतीय संस्कृति का रेखांकन करते हुए राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' संस्कृत के चार अध्याय में उल्लेख करते हैं कि -

भारतीय संस्कृति विश्व की एक महान् संस्कृति है। संस्कृति के इन्हीं चन्दन कछारों में कभी सम्यक ज्ञान, सम्यक दृष्टि एवं सम्यक चारित्र का जयघोष सुना, तो कभी वैदिक सभ्यता के पूर्व की एक अरुणीय रक्तिम कुंकुमी में सूर्योपासना के वैदिक मंत्र सुने, तो कभी संस्कृति के इन्हीं क्षितिज द्वारों पर ऊँ ह्री अर्हम् नमः का भक्ति-नाद सुना, तो कभी वीतराग वाणी में आत्मा का आलोकमय उज्ज्वल रूप देखा।

कभी अरण्य संस्कृति के अध्येताओं ने उपनिषद की नवल उषा की उपासना की, तो कभी श्रमणों ने जीवन के अध्यात्म तत्वों की गवेषणा की तो कभी जन्म, जरा और मृत्यु से मोक्ष प्राप्त करने के लिए निर्वाण का सोपान रचा।

कभी वैदिक साहित्य का उत्स "तमसो मां ज्योर्तिगमय, असतो मां सद्गमय, मृत्योमां अमृत गमय" की व्याख्या करता हुआ अरण्य का मनीषी भारत की संस्कृति को नवल परिवेश दे रहा था। तो कभी श्रमण यात्रियों ने वीतरागत्व का अनुसरण करते हुए जन-जीवन, आत्मा, शरीर और पुद्गल की सूक्ष्म चिन्तना में लगा हुआ था।

संस्कृति की इसी पुण्य त्रिपथगा में भारत का अध्यात्म चिन्तन अपना अर्घ्य चढ़ा रहा था, तो कभी सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र का विमल रूप पूरी आभा और विभा के साथ सभ्यता का मलयजी गंध प्रसारित करता हुआ अबाध गति से उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम की ओर बह रहा था।

भारतीय संस्कृति की यह सनातनी सलिला सरस धारा की तरह विंध्य को गुदगुदाती हुई, सतपुड़ा को जगाती हुई नदी-नद-नालों के कछारों में अबाध गति से प्रवाहमान होती रही है। जन-जीवन में साधारण जन उपदेशों, प्रवचनों, स्तवनों एवं भक्ति-भाव और भजन के माध्यम से इस संस्कृति से स्नान कर नए-नए स्नातक बन रहे थे।

भारतीय संस्कृति का चिन्तन तीन सोपानों की सम्यकता का एक अपूर्व मिश्रण है और वे हैं -

१. जैन संस्कृति २. बौद्ध संस्कृति ३. वैदिक संस्कृति

संस्कृति की इन्हीं तीनों धाराओं की सीमा, काल, गति, समय और इतिहास इतना सन्निकट है, उनके विचारों में इतनी गहन समीपता है, उनके भावों में इतना सामीप्य है कि हर संस्कृति पुष्प का रंग-रूप सौरभ एवं सुषमा एक दूसरे को अनुप्राणित करती रही है और यही हमारे राष्ट्र की आत्मा का स्वस्थ स्वरूप है। यही हमारी राष्ट्रीय एकता का मूलाधार है एक सुदृढ़ सेतुबंध। इसी त्रिवेणी संगम पर भारत की आत्मा का स्वस्थ चिंतन हमें देखने को मिलता है।

हमारी संस्कृति के ये प्रबल स्तंभ, ये अनुपम सर्ग, ये अध्याय ज्योति स्तंभ रहे हैं। आलोक स्तंभ रहे हैं। आक्रान्तों ने, विदेशी आक्रमणों ने, मूर्ति ध्वंसकों ने न जाने कितने कितने बार हमारी संस्कृति पर गहरा प्रहार किया। मूर्ति की भंजना की गई, धर्मग्रंथ जला डाले गए, बलात् धर्म पर आघात किया गया, मगर हमारा संस्कृति का दीप अच्क्षुण जलता रहा।

सहयोग-शांति और मैत्री, यहीं से हमारे धर्म का उद्‌भव होता है और विकास भी। हमारी चिन्तना को गति मिली, मानवीय कर्म का विकास हुआ और साहित्य को मिली हजारों वीथिकाएँ, हजारों उपवन, हजारों श्रद्धा सुमन, भावों के नए-नए स्तवन।

श्रद्धा-भक्ति और दर्शन के क्षेत्र अलग-अलग होते हुए भी जो चन्दनीय शीतलता हमें अध्यात्म के इस परिजात क्षेत्र में मिलती है ऐसा अद्‌भुत समन्वय हमें संसार के किसी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और साहित्य के धरातल पर दर्शनीय नहीं होती। संस्कृति के इन्हीं कछारों के आस-पास भारतीय वाङ्मय पूरी सुषमा के साथ पुष्पित हुआ और जन-जीवन को संस्कार एवं संस्कृति से सनातन काल से दीक्षित करता रहा।

जैन, बौद्ध और वैदिक परम्परा के मनीषियों ने, साधकों ने, प्रज्ञा-पुत्रों ने जो गहन अनुभूतियां प्राप्त कीं उनमें अपनी-अपनी विशिष्टता थी और उसका मूल कारण था साधना का अपना-अपना क्षेत्र-साधना का अपना-अपना परिवेश, साधना के उदात्त और सर्वोच्च सोपानों में वे मूल तत्त्व के सन्निकट अवश्य दिखाई देते हैं लेकिन अन्य स्थलों में उनकी अनुभूतियों में अति सन्निकटता न भी रही हो तो भी अत्यन्त दूरी भी नहीं थी।

कुछ अनुभूतियों पर विचार-विमर्श भी हुआ, शास्त्रार्थन भी हुए और कुछ पर अध्यात्म चिन्तन का अविभाज्य प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुआ। युगानुरूप-

१. प्राकृत २. पाली ३. और संस्कृत

भावों और विचारों की मौका बनी इन्हीं के शब्दों ने हमारी संस्कृति को

ज्ञान का बोध कराया। उपर्युक्त तीनों भाषाओं में शब्द-अर्थ-भाव की गहनता, उसकी विचारणालिपि, अर्थचिंतन, भाव, बोध, वाणी, सभी में एक साम्य सहजता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

न केवल भारतीय संस्कृति के विचार, उनके शब्दों की संरचना में, व्याकरण में, दर्शन में, सांख्य में, वेदान्त में, सभी में हमें एक ही विमल आत्मा का प्रकाश दिखाई देता है।

जैन संस्कृति अध्यात्म प्रधान है। जैन आगमों में अध्यात्म का स्वर प्रधान रूप से मुखरित हुआ है। वहीं दूसरी ओर वेदों में लौकिकता का स्वर प्रस्फुटित हुआ है। कुछ समय पूर्व पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विज्ञों की यह धारणा थी कि वेद ही आगम और त्रिपिटक के मूल स्रोत हैं पर ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक अनुशीलन तथा मोहनजोदड़ों और हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त ध्वंसावशेषों ने विज्ञों की धारणा में आमूल परिवर्तन कर दिया है कि आर्यों के आगमन के पूर्व भी भारत में जो संस्कृति थी वह पूर्ण रूप से विकसित थी, उसमें संस्कारों के उदात्त भाव थे, उसकी चिन्तता की गहराई अत्यन्त सूक्ष्म थी, उसमें संस्कारों का उत्कर्ष था- आर्यों के आगमन के पूर्व भारत असभ्य नहीं था। यहाँ पूर्ण रूप से संस्कृति का विकास हुआ था और वह संस्कृति थी- श्रमण संस्कृति।

श्रमण संस्कृति के प्रभाव से ही वैदिक परम्परा में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह जैसे महाव्रतों को स्वीकार किया गया है। आज जो वैदिक परम्परा में अहिंसा आदि का निरूपण चित्रण मिलता है वह जैन संस्कृति की देन है।

अतः जैन संस्कृति भारत की प्राचीनतम संस्कृति है। इन्हीं संस्कारों से इनके साहित्य, दर्शन और अध्यात्म की संरचना की गई। किसी भी संस्कृति या साहित्य का मूल नाभिक केन्द्र मनुष्य ही रहा है। अतः जैनाचार्यों ने मानवीय पक्ष को उजागर किया है। मनुष्य के अंतरंग एवं बहिरंग विचारों को, चिंतन को और उसके दर्शन को नवल...न्यास देकर संस्कारित करना धर्म का काम है जिसके लिए साधकों ने पूरी निष्ठा एवं लगन से एक सनातनीय प्रक्रिया से गुजर कर पूरा किया है।

जैन साधकों ने मानवीय सभ्यता और संस्कृति के उत्थान में आदमी के अन्दर की कल्मषता को झांका है और उसे दूर करने का त्रिपार्श्वीय सूत्र सम्यक दर्शन की भूमिका दी है। सम्यक ज्ञान का अवसर दिया है और चारित्र की सम्यकता देकर एक विमल प्रकाश दिया है।

इन्हीं उपर्युक्त धारणाओं, विचारनाओं और साहित्यिक तथा सांस्कृतिक

अल्पनाओं को आत्मसात करता हुआ तथा मानवीय अन्तरंग एवं बहिरंग स्थितियों की मीमांसा करता हुआ आचार्य प्रवर श्रीमद लब्धि सूरि के पदों में स्तवनों के स्तावक हैं जिनमें भक्ति का सौरभ है और है सत् चित्त आनन्द देने वाला सच्चिदानन्दनीय सौरभ।

जैन संस्कृति और जैन संस्कारों के परिपथ में परिभ्रमण करते हुए ये स्तवन, ये स्तोत्र, ये भावों की सुरभित माला मनुष्य को मानवता के उदात्त सोपानों में पहुँचाने में सहायक हैं इनके पदों में लालित्य है और है संगीत की आत्मा।

रागों से गुम्फित ये स्तवन वीतरागी हैं उनमें वैराग्य का पुट है वहीं दूसरी ओर ब्रह्मानंद सहोदर संगीत की मधुरिम-मधुरिम पग ध्वनि। इन पदों की आत्मा के तल में एक विमल प्रकाश से आभासित समग्र संसार एक ऐसे अवर्णनीय दर्शन की कथ्य भूमि को सहज ही देख सकता है जो साधारण जन के लिए सहज नहीं है। इसमें गुम्फित धारणाओं और भावों में जीवन का सार्वभौम लक्ष्य समाहित है।

इन स्तवनों में एक सनातनीय नारदीय वीणा का घोष विनय के पदों में श्रद्धा और भक्ति की अविरल धारा के रूप में मिलता है। इस भक्ति नाद में अक्षरा नाचती है। भावों की भैरवी सिद्धा बनती है। मुमुक्षु क्षणों को सिद्ध कर मानवीय कल्मषता घुलने लगती है और जीवन में एक आध्यात्मिक प्रकाश शनैः शनैः सत् चित् आनंद में उतर कर ज्ञान की अभिवृद्धि करता है।

आचार्यश्री लब्धि सूरि जी वर्तमान युग के समर्थ एवं अन्वेषक तथा मनस्वी संत पुरुष थे। जिस विषय को वे अपने प्रतिपादन का केन्द्र बनाते थे उसकी अतुल गहराई में प्रवेश करते थे।

काव्य ग्रंथ के प्रारंभ में तीर्थंकर जिन, सिद्ध और संयतों को नमस्कार किया है। पाप-दुश्चरित्र की निंदा करते हुये उनके प्रत्याख्यान पर बल दिया है। ममत्व त्याग को महत्व दिया है। निश्चय दृष्टि से आत्मा ही ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र का रूप है। साधक को मूल गुण और उत्तर गुणों का प्रतिक्रमण करना चाहिए। पापों की आलोचना, निंदा और गर्हा करनी चाहिए। जो निशल्य होता है उसी की शुद्धि होती है, सशल्य की शुद्धि नहीं होती- यही विचार उनके अनेक स्तवनों की मूर्धन्य भाषा है।

संसार अशरण भूत है। कामयोगों से कदापि तृप्ति नहीं मिलती अतः पंचमहाव्रत की रचना करता हुआ निदान रहित होकर मरण की प्रतीक्षा करता

है। सूरि जी के स्तवनों के ये शाश्वत भाव भारतीय वाङ्मय के आदर्श एवं अनादि भाव हैं।

वंदन आवश्यक है। वंदना के उपसर्ग में तीर्थंकरों के गुणों का उत्कीर्तन हुआ है, क्योंकि तीर्थंकर देव हैं। मन, वचन और काया का वह प्रशस्त व्यापार जिससे सद्गुरु के प्रति भक्ति व बहुमान प्रकट हो, वह वंदन है। वंदना के इस सोपान में महावीर स्वामी का जन्म, आदिनाथ जिन स्तुति, नेमिनाथ जिन स्तुति, पार्श्वनाथ जिन स्तुति, सिद्धचक्र स्तुति, सिद्धगिरि चैत्य दर्शन, सिद्धचक्र चैत्य वंदन के माध्यम से नाम की महिमा का विशद् वर्णन किया गया है।

नाम, जप, जाप, पुरश्चरण, वैदिक धर्म में, जैन धर्म में और बौद्ध त्रिपिटकों में अध्यात्म की सर्वोच्चता पर पहुँचने का श्रेष्ठ सोपान निरूपित किया गया है। वास्तव में नाम की महिमा वही पुरुष जान सकता है जिसका मन निरन्तर सिद्ध पुरुषों एवं भगवन्नाम में संलग्न रहता है।

नाम की प्रिय एवं मधुर स्मृति से जिसके क्षण-क्षण में रोमांच एवं अश्रुपात होते हैं जो प्रतिफल नाम के साथ आत्मसात् होकर जीवन का एक नया युगपत् शुरू करते हैं ऐसे ही सिद्ध पुरुषों के इन स्तवनों से एक ऐसी खुशबू, एक अलौकिक अध्यात्म गंध और मलयजी हवा का स्पर्श मिलेगा जिससे उनके जीवन सर्गों में पवित्रता का निरन्तर विकास होता रहेगा। दृष्टव्य है सूरिजी के स्तवनों की रसभीनी साहित्यिक महक जिससे युग की आत्मा को पवित्रता का बोध हो-

आत्म कमल में वीर प्रभु ध्याना, घड़ी घड़ी, पल पल, जिन गुण गाना।
लब्धि सूरि हो भव से पारा, विश्व वत्सल भव तारण हारा।।

आत्मा के विमल प्रकाश में खिले हुए अरविंद का सौरभ वही पा सकता है जिनकी अंजुरियों में श्रद्धा है, भक्ति है और है सम्यकता।

दुख जलधि में डूबे जग को, पार करण प्रभु जहाज।
कोई महान शिव ब्रह्म उपासी, हम सिरताज जिनराज।।

भगवन्नाम से पापों का नाश होता है, ज्ञान की सम्यकता का सोपान खुल जाता है और इसी से परमपद की प्राप्ति होती है। श्रद्धा, विश्वास और भक्ति की त्रिपथगा पर जिन आचार्यों ने नाम जप की उपासना की, वे दुःख संसार के भवसागर से पार हो गए। भक्ति और भजन के जहाज ने उन्हें पार उतारा चाहे वह विराट शिव हो, ब्रह्मा हो, वीतराग हो, बुद्ध हो या महावीर।

गीता के दशम अध्याय में कृष्ण ने कहा है -

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

(गीता १०/९-१०)

आचार्यश्री लब्धि सूरि द्वारा रचित **श्री महावीर स्वामी पालना स्तवन** हमें हिन्दी के यशस्वी संत कवि सूर के पदों की याद दिला जाता है। संत हृदय के भावों का तादात्म सदा एक चिरन्तन सत्य की व्याख्या करता है, काल गति और सीमा के दायरे में शब्दों और भावों के माध्यम से बार-बार अनुनादित होता है। सूर एवं लब्धि सूरि के पदों की सन्निकटता देखिए-

रत्न कनक मय पारणु सोहे मंगल गावे सब देव दवैयां।
मोर मैना और पुतली जिणंदा गीत गावत तिन्हा किन्नर गवैया।।
त्रण धामके धारी जिनवर,जग माया में नाहि नचैया।।
कर कृपा दास पर, दुःख दुःख बाधा नाश कर।
सुख दिया मोक्षनूं मैं अधागूँ।।
कमल गुंज आत्मा, बोल परमात्मा
सकल लब्धि भावे हूँ जागूँ।।

आत्मा का अरविंद ईश्वरीय अनुग्रह और उसकी कृपा के फल पर ही खिलता है। सन्त हृदय जन-जीवन की आत्मा के अरविंद को खिलाने के लिए सतत् प्रयासशील रहता है। मोह-माया की तमसा आवृत्ति तथा दुखावर्तन उसी की कृपा से दूर होते हैं। तभी परम सुख की, मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सकल मुज आतमा, बोल परमात्मा,सकल लब्धि भावे हूं जागूँ

× × × × × ×

तरले भवसागर प्राणी, ये है बहुत दुःखों की खानि।
जनम जरा और मरण वियोग, शोक भरा है पानी।
धरम जहाज है इसमें सुन्दर वायु वेग जिन वाणी।।

उपमा और रूपक की छटा इस पद में देखते ही बनती है। धर्म का नौकायान है। वह नौका भी तब तक स्थिर है जब तक वायु का संघात उसे प्राप्त नहीं है। जिन वाणी ही वह प्रेरणा स्रोत है, गति स्रोत है, सद्गति स्रोत है जो हमारी धर्म नौका को आगे बढ़ाने में सहायक है। जिन वाणी ही हमें सद्गति की ओर उन्मुख करता है। जन्म, जरा और मृत्यु से आवेष्टित इस संसार में केवल करुणा की जाह्नी है हर आँखों में दुःख की सजल घटाएँ हैं, आँसू है, पानी है - यहाँ से जन्म जरा और मृत्यु के दरवाजे खोलता हुआ मनुष्य शोक और वियोग के महाअंधकार में विलुप्त हो जाता है। हथेली पर अस्तित्व का सूरज

उगाए मनुष्य आता है और अपने सूरज को मार कर मर जाता है - यह कोई जीवनोपलब्धि नहीं, इन तमाम संभावनाओं के बाद भी बहुत कुछ उपलब्धियाँ और भी हैं। इन्हें ही आचार्य लब्धि सूरि रेखांकित करते हैं।

आतम में ज्योत प्रगटी,जिनकी सकल स्वरूपी।
रूपी भाव जग के जाने,जाने सभी अरूपी।।

आत्म प्रकाश का यह कितना विलक्षण स्वरूप है जिसे लब्धि सूरि जी ने अपनी उपलब्धि की झोली में सहज ही कबीर की तरह डाल लिया है। एक सहज समाधि की तरह यह उपलब्धि मनुष्य की मानवेतर उपलब्धि है।

आतम में ज्योति प्रगटी, यही मनुष्य का अभ्युदय है यहीं से चरित्र में फूलों की गंध रमने लगती है इसी उत्स से कोई शिव सत्य बनकर सुन्दरता को रेखांकित करता है। रूपी और अरूपी, आकार और साकार, गुण और निर्गुण की सीमा रेखा, ये नयनीय अभिराम हर जाते हैं सारे प्रतिबंध टूट जाते हैं, द्वैत समाप्त हो जाता है और आत्मसात का एकाकार रूप सामने आ जाता है।

स्तवन एवं वंदना के भक्ति गीतों में जिन तीर्थंकरों का जन्म, इतिहास, युग एवं कालावधि साहित्य वल्लरियों में इतिहास पुष्प की तरह गुम्फित है। उसमें उस युग के यशस्वी आचार विचार तो हैं ही आने वाली पीढ़ी को आत्म कल्याण के लिए प्रेरित करने वाले शब्द शक्ति हैं, शब्द गुण हैं।

मोह तिमिगल छोर है, इसमें वरण सब प्राणी।
सबको इसने निगल लिए हैं फिर भी न उदर भराणी।।
जल आश्रय छेक दूर करन को, संवर कील लगानी।
निजरा वर्तन हाथ धरी ने बाहर निकालो पानी।।

अध्यात्म का यह मूल मंत्र, प्रज्ञा की अतुल गहराई की यह सूक्ष्म अनुभूति कोई विरला ही समझ सकता है जैसे कबीर के शब्दों में-

काहे री नलिनी तू कुम्हलानि।
जल में नलिनी तोर निवास। जल में उतपति, जल में विकास।।

मोहपाश इस सकल मायावी भौतिक जगत् में अतल की छाया धूमिल धूमिल सी दिखाई पड़ती है इसीलिए यह माया रूपी मगर शनैः शनैः सबको ग्रस रहा है फिर भी काल का उदर नही भर रहा है इसलिए आत्म ज्ञान की कील ही लोगों को उबारने में सक्षम है। निर्जरा बर्तन हाथ धरीने, धर्म एक ऐसा पात्र है जो निर्जरा है, सत्य है, शाश्वत है, अविनाशी है जरा से मुक्त निर्जरा है उसी से यह माया जल उलीचा जा सकता है।

अतः

अरिहंत सिद्ध सुरि पाठक मुनिवर धार। दर्शन सुखदायी ज्ञान चरण तप सार।
ये नवपद ध्याते कोटि भव दुःख वार।अध्यात्म भरीये निज आतम भंडार।।

अपनी आत्मा के भंडार में भौतिक सुखों के आयामों का संग्रह मत कीजिए। मोती, माणिक, पन्ना, हीरे और जवाहरात से भी ज्यादा प्रकाशवान नक्षत्र है "आत्मा"। अपनी आत्मा के भंडार में सम्यक ज्ञान का कोष भरिये- यही मानवीय तप का सार तत्व है। अध्यात्म के इसी कोष से यह जीवन कोष भवों से पार उतर सकता है।

आत्म कमल में ज्ञान ने, आपे जिनवर देव,
लब्धि सूरि समकित लेह चारित्र नित्य मेव।

देह के अक्षर आज नहीं तो कल समय की शिला पर से मिट जाएंगे केवल यश की यशस्विता अक्षय बनकर कालातीत होजाएगी, धर्म बनकर आरूढ़ रहेगी। आत्मा की उपलब्धि परमात्मा की हो जायेगी। एक पूरी समवेत यात्रा का विराम हो जावेगा। केवल शाश्वत रहेगा वह पड़ाव जिसके लिए उस यात्री ने यात्रा की थी। अंग्रेजी महान कवि राबर्ट लुइस स्टीफेन्शन के शब्दों में-

केवल रह जाता है चरित्र और चरित्र का यश। यही मानवीय यात्रा का शेष अशेष इतिहास होता है यूं तो समग्र संसार सुन्दर दिखाई पड़ता है लेकिन हमें यहाँ रमना नहीं है सोने से पहले हमें जागरण के गीत दे जाना है अमेरिका के मूर्धन्य कवि राबर्ट फास्ट के शब्दों में -

मुझे एक लम्बी यात्रा तय करनी है निद्रा से पहले। अतः आत्मानुरागी निद्रा से पूर्व सचेत हो जाएं।

एक दिन यह प्रकाश महासूर्य से संधि निश्चय ही कर लेगा लेकिन इसके पूर्व इन्हीं भावभूमि को प्रस्तुत करते हुए लब्धि सूरि जी कहते हैं -

फिर ज्योति से ज्योति मिलाना। सिद्ध गिरि ज्यूं आप विराजो।
दर्शन करी मुक्ति बरी। आत्म कमल में लब्धि मिलाना।।

लब्धि सूरि जी की लेखनी की यह उदारता है यही वो चरम बिन्दु है यही लेखनी का निर्वाण है कि आत्म कमल खिले।

सोए हुए मानव के अंदर जो आत्मा का अरविंद है वहाँ प्रकाश की किरणें उतरें पंखुरियों में कसमसाहट हो - नव प्रस्फुटन हो आत्मा का सौरभ दिग् दिगन्त तक बिखरे, प्रसरित हो। पीड़ित मानवता महावीर के पथ का अनुगमन करे, समस्त मानव जाति मानवीय इतिहास के नव लेखन में अपनी आत्मा के बंद दरवाजे खोले।

समाज को साम्प्रदायिकता से बचाना होगा

श्री लब्धिसूरि पुण्यतिथि महोत्सव के अवसर पर आचार्य राजयशसूरि का संदेश

श्री उवसग्गहर पार्श्व तीर्थ के तपोभूमि में चैतन्यता के शिखर महापुरुष, अध्यात्म के अविरल ऊर्जाकार, आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय लब्धिसूरीश्वर जी म० सा० को उनकी ३४ वीं पुण्य तिथि के अवसर पर हजारों श्रद्धालुओं ने कृतज्ञताभरी श्रद्धा-सुमन समर्पित करते वंदन किया। महान् आचार्य की सान्निध्यतामें 'गुणानुवाद महोत्सव' के रूप में पुण्य तिथि मनाई गई।

सुविज्ञ समाजसेवी डॉ. ज्ञानचंद जैन ने श्रद्धालुओं की ओर से श्री चरणों में पुष्पांजलि अर्पित की। पू. मुनिश्री वीतरागयशविजय जी ने लब्धि गुरुदेव की शासन प्रभावना और पू. मुनिश्री विश्रुतयश विजय जी ने गुरुदेव की अहिंसा के कार्यों की विशद् व्याख्या की। पू. मुनि श्री नंदीयशविजय जी ने लब्धि गुरुदेव का अविरल वात्सल्य मूर्तिवंत निरूपित करते हुए बेजोड़ शासन प्रभावक, परोपकारी गुरुभगवंत की कृपाओं को स्मरण किया और कहा कि वे वचन सिद्ध योगी महापुरुष थे। इनकी महिमा, इनकी गरिमा अविराम प्रवाहित है। लब्धि गुरुदेव ने पंजाब को अहिंसा का दिव्य संदेश सुनाया।

समाज को साम्प्रदायिकता से बचाना होगा आत्मोद्धार के ओजस्वी प्रेरक, तीर्थप्रतिष्ठाचार्य श्री राजयशसूरीश्वर जी म. सा. ने 'गुणानुवाद महोत्सव' को संबोधित करते हुए जनमानस को सचेत किया कि आज जगह-जगह साम्प्रदायिकता का जहर तिल-तिलकर आत्मोन्नति के सौंदर्य को नष्ट करके फैलाया जा रहा है। समाज पर हावी हो रहे मुट्ठी भर लोग धर्म के नाम पर अलगाव का ताना-बाना बुनते हैं, कहीं मंदिर का विवाद फैलाया जाता है तो कहीं मच्छवाद को लेकर परस्पर दूरियाँ बढ़ाई जाती हैं। आज समाज को इस साम्प्रदायिकता से बचाना होगा। गुरुदेव लब्धिसूरि को महान् योगी बताते हुए उन्होंने कहा कि वे अपने पीछे श्रावक-श्राविकाओं, साधु-साध्वियों की महान् परम्परा छोड़ गए हैं। उनका संदेश था कि सभी धर्म एक हैं। व्यक्ति चाहे किसी भी धर्म का हो झूठ बोलने की प्रवृत्ति हर जगह पाई गई है। इस अधर्म को दूर करने के तरीके हर धर्म में बताए गए हैं। सबके तरीके अलग हैं लेकिन काम एक है। अतः सबका धर्म भी एक है। मूलतः आत्मा को कर्म रहित बनाना ही धर्म है। आचार्य राजयशसूरीश्वर महाराज ने गुरुदेव लब्धिसूरि के अंतिम निर्वाण प्रसंग का भावपूर्ण वर्णन करते हुए बताया कि वृद्धों की सेवाओं का अवसर कभी गंवाना नहीं चाहिए। ऐसे मौके बहुत कम आते हैं। इस संबंध में उन्होंने एक दोहा उद्घृत किया। जब हम पैदा हुए जग हंसत तुम रोए, ऐसी करनी कर चलो, तुम हंसत जगत रोए।' उन्होंने

कहा कि योगी पुरुष का व्यक्तित्व ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं तप के समन्वय से ही खिलता है। योगी पुरुषों के दर्शन से पुण्य प्राप्त हो जाता है। उनके व्यक्तित्व में इतना चुम्बकीय प्रभाव होता है कि उनके पास बैठने मात्र से आनंद की अनुभूति होती है। साधु पुरुष यदि चुप हैं तो भी उसमें संदेश है। यदि वह बोलते हैं तो भी उसमें संदेश रहते हैं। महाराज लब्धिसूरि का आदर्श था कि प्रत्येक आत्मा में सद्‌गुण और दुगुर्ण दोनों व्याप्त है। हमें सिर्फ सद्‌गुण को आत्मसात करना चाहिए। सब गुण कहीं नहीं है। सबमें कुछ न कुछ दोष है। लेकिन प्रयास करें। प्रत्येक मनुष्य में परमात्मा के तत्व हैं। अच्छे गुणों को प्राप्त कर हम परमात्व को प्राप्त कर सकते हैं।

कोयल और कुत्ते का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि यह मनुष्य मात्र पर निर्भर है कि वह कोयल का गुण प्राप्त करता है या कुत्ते का आचरण करता है, उन्होंने मानव को खिलौना और मन को पालने की संज्ञा दी। हर मानव में निराशा भी है। बम्बई के लोकल ट्रेन का उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि ट्रेन में चढ़ने वाले हर व्यक्ति सहारे के लिए डण्डे को थामे रहते हैं इसी तरह हर आदमी को सहारा चाहिए। यह सहारा योगी पुरुष के सान्निध्य में प्राप्त होता है।

इस संबंध में चार्ली चैपलिन का उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया कि सारे जगह को हंसाने वाला वह विख्यात् कलाकार भी अंदर से कितना दुःखी था। महाराज साहब ने जब उनसे पूछा कि तुम सारे जग को हंसाते हो लेकिन यदि तुम्हारे अंदर का कोई दुःख हो तो वह मुझसे बेझिझक कहो। आचार्यश्री ने बताया कि किस तरह चार्ली यह सुनकर महाराज साहब की गोद में फूट-फूट कर रोया?

उन्होंने कहा कि मीठे वचन मित्र के समान होते हैं मन को ठंडक प्रदान करते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी बात कहना चाहता है तो उससे करीब बुलाकर ध्यान व सरलता से सुनो। सामने वाले की आधी समस्या यूं ही समाप्त हो जाती है। एक दूसरे के विचारों को तन्मय होकर सुनने से ही यह बोध होता है कि इसमें क्या त्रुटि है किसमें क्या खूबी है। दूसरों को जानने समझने से ही निकटता आती है, मित्रता आती है। उन्होंने ८ सौ साल पुराने संस्कृत ग्रंथ के उद्‌घाटन प्रसंग का उल्लेख करते हुए बताया कि महापुरुष कितने विनम्र होते हैं? उन्होंने बताया कि गुरुदेव महाराज ने जब तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् को ग्रंथ के उद्‌घाटन के लिए आमंत्रण हेतु मात्र एक पत्र लिखा तब किस तरह उपराष्ट्रपति जी विनम्रतापूर्वक उद्‌घाटन समारोह में पहुंचे और गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त किया।

आचार्यश्री विजयलब्धिसूरि जी महाराज

-एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व

डा० गंगाचरण त्रिपाठी

जीवन की अन्त: सलिसा के अवगाहन, मन्थन एवं समय और समाज के निरीक्षण-परीक्षण से प्राप्त निष्कर्ष सिमट-सिमट कर जब परस्पर पूर्वापर अथवा सापेक्षय सम्बन्ध स्थापित करने लगते हैं तो समाज, देश या जातिविशेष की चिन्तन-सरणि सार्थक हो जाती है। निरन्तरता का रूप धारण करते समय इसमें आरोह-अवरोह, ऋजुता-वक्रता, कोमलता- कठोरता आदि के भी अवसर आते हैं और यदि ये अवसर वाद का रूप धारण कर लेते हैं तो तत्व-बोध की प्रेरणा मिलती है। तत्व-बोध की यह स्थिति जब परम्परा के रूप में बदल जाती है तो उसे संस्कृति की संज्ञा से संबोधित किया जाने लगता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि किसी देश या जातिविशेष की संस्कृति किसी क्षणिक घटना, विचारणा, भावना अथवा चिन्तन का आकस्मिक अथवा अप्रत्याशित परिणाम न होकर व्यक्ति या समाज द्वारा स्वीकृत सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का परिपाक या सच्चिदानंद की खोज की दिशा में किये गये प्रयास का इतिहास है। भारतीय संस्कृति को भी इस तथ्य का अपवाद नहीं कहा जा सकता।

भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में में आज हमारी जो धारणा है अथवा भारतीय संस्कृति की विशेषताओं के रूप में हम जिन सद्गुणों की गणना करते हैं वे आमुष्मिक या आमुष्यमाण की सीमा में नहीं बांधे जा सकते। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस देश के संस्कृति की तुलना नदी के डेल्टा के साथ की है। इसका कारण यह है कि इसके निर्माण में यक्ष, किन्नर, असुर, गन्धर्व, विद्याधर, व्रात्र्य, आर्य, अनार्य आदि अनेक जातियों और सभ्यताओं के तत्वों के साथ-साथ हूण, कुश, कनिष्क आदि के चिन्तन ने भी योग दिया है। यूनानी, यूरोपीय और इस्लामिक संस्कृति से भी इसने बहुत कुछ ग्रहण किया है। अत: आज भारतीय संस्कृति के रूप में हमें जो कुछ प्राप्त है उसमें वैदिक ऋषियों के प्रणव नाद की गुंजार, बौद्धानुयियों के निर्वाण के भाव, जैन साधकों के अर्हन्तारम् के अनुनाद के अतिरिक्त वट-वृक्षों की विशालता, कमल-पुष्पों की स्निग्धता, जिन शासन की कोमल कारुणिकता या स्नेहिल सात्विकता तथा वन्य जीवन की समन्वयशीलता के भी तत्व विद्यमान हैं। इस संस्कृति की इसी व्यापकता के कारण इसमें यदि "तमसो मा ज्योर्तिगमय", "असतो मा सद्गमय" मृत्योर्मा अमृत गमय", की कामना की जाती है तो आत्मा, शरीर और पुद्गल सम्बन्धिनी

सूक्ष्म चिन्तना के माध्यम से सहयोग, शान्ति और मैत्री की स्थिति उत्पन्न करके नर को नारायण बनाने के उपक्रम में मनुष्यता का सन्देश देते हुए "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्", आशीर्वाद भी दिया जाता है।

धर्म अपने मूल रूप में व्यक्ति को साथ जोड़ता है, मनुष्य को ईश्वर के साथ स्थापित करने का मार्ग दिखाता है, सत्य और नैतिकता के माध्यम से स्वार्थ त्याग करने की प्रेरणा देता है किन्तु जब यह किसी वाद या विशेष के चक्र में पड़ जाता है तो इसके उद्देश्य सीमित हो जाते हैं। इस स्थिति में यह अपने वाद अथवा विशेषण रहित स्वरूप की भांति जन-मनरंजक अथवा लोकोपकारी नहीं रह जाता। यही कारण है कि भारत में धर्म को कभी किसी घेरे में घेरने का प्रयास न करके जनता द्वारा स्वीकृत धर्म के रूप को आच्छादित करने वाले बाह्य-विधानों को हटाने का ही उपक्रम किया जाता रहा है और ऊपर से हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, आर्य, सनातन आदि नाम देने के बावजूद अन्दर से सभी ने धर्म के ऐसे तत्वों-सूक्ष्म तत्वों को स्वीकारा जो देश की भावनात्मक एकता में सहायक होते हुए अनेकता में एकता की स्थापना करने में सहायक हो सके।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने भारत को महामानवों का महार्णव कहा है। इससे यह ध्वनित होती है कि जिस प्रकार यह निश्चित नहीं है कि समुद्र में कब, कहां, कौन सा रत्न उपलब्ध हो जायेगा और जितने रत्न उपलब्ध हो चुके हैं उनसे अधिक रत्न अब उपलब्ध न होंगे उसी भांति इस देश में कब, कहां, किस प्रदेश, जाति-समाज, धर्म या परिवार में कैसा नर-रत्न उत्पन्न हो चुका है या होगा इसकी कोई सीमा नहीं है। नर-रत्नों और जन-हित के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले महापुरुषों की दृष्टि से भारत भाग्यशाली रहा है। केवल अतीत में ही नहीं वरन् वर्तमान में भी इस देश में ऐसे महामानव हो चुके हैं और अभी भी हैं जो अपनी साधना, उपासना, चिन्तना, कल्पना, सर्जना के साथ-साथ शूरता, वीरता, उदारता, महानता के अतिरिक्त अपनी दया, क्षमा, दृढ़ता, विद्वत्ता आदि की दृष्टि से अप्रतिम माने जाते हैं।

आचार्यश्री विजयलब्धि सूरि जी महाराज का नाम सत्वान्वेषिणी भारतीय मनीषाओं के मध्य बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आचार्य श्री न केवल एक मनस्वी संत ही थे वरन् प्रतिपाद्य विषय की अतल गहराई में पैठकर उसके सारभूत तत्व को निकालने तथा उसे सुग्राह्य, सुपाच्य और सुबोध शैली में प्रकट करने की उनमें अद्‌भुत क्षमता भी थी। ५९ वर्षों तक जिन शासन की निरन्तर

साधना और प्रतिस्थापना करने के साथ-साथ उन्होंने ३७ वर्षों तक जिन धर्म के आचार्य के गुरुतर दायित्व का जिस रूप में निर्वाह किया और इन सीमाओं के मध्य रहकर भी विभिन्न धर्मों और उनके अनुयायियों के प्रति जो सम्यक्, दृष्टि, सम्यक् ममत्व और अपनत्व दिखाया वह एक धर्म और समाज से सम्बन्धित होने पर भी इनको मानव मात्र का आचार्य प्रमाणित करते हुये "उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" में निहित सत्य को चरितार्थ करता है। यह ठीक है कि आचार्य लब्धिसूरि जी जिन शास्त्र की प्रभावना करने वाले आचार्य थे परन्तु साधना और आराधना के पश्चात् इन्हें जो दिव्य शक्तियाँ प्राप्त हुई थीं उनका उपयोग इन्होंने किसी एक व्यक्ति या समाज के लिये न करके मानवमात्र के कल्याण के लिये किया। इनका पूरा जीवन और समय आत्मा के अरविन्द को विकसित करने के उपक्रम में बीता। आत्मा को ये ज्ञान और दर्शन-स्वरूप मानते थे तथा यह कहते थे कि भौतिक पदार्थ आत्मा के असंतोष का कारण है, संसार जन-जीवन को अशरण अथवा अनाथ बनाता है और इसके कारण जीवन में अनेक कष्ट उत्पन्न होते रहते हैं। इसलिये ये निरन्तर यह प्रयत्न करते रहे कि शास्त्रों की प्रभावना द्वारा अज्ञानाधंकार को दूर कर जन-मानस में करुणा की जाह्नवी प्रवाहित की जाये और मनुष्य के हृदय में मनुष्य के प्रति अपनत्व उत्पन्न हो।

पूज्यपाद आचार्यश्री विजयलब्धि सूरि जी महाराज यद्यपि मूलतः ऐसी परम्परा के साधक थे जो उपासना-आराधना के बल पर वैयक्तिक मुक्ति का मार्ग खोजने पर बल देती है। परन्तु उनको यह सत्य पूरी तरह से ज्ञात था कि वृक्ष अपने लिये नहीं फलते, नदियां अपना पानी स्वयं नहीं पीतीं और जल से युक्त बादल नीचे की ओर झुक जाते हैं। इसलिये वे अपनी साधना से प्राप्त सत्य का प्रयोग केवल व्यक्ति या समाज के लिये ही न करके मानव मात्र के कल्याण के लिये करते थे। वे यह जानते थे कि भारत गांवों का देश है और यहाँ की अधिकांश जनता गावों में रहती है और अज्ञानता के साथ-साथ वह अन्य अनेक कुव्यसनों अथवा कुप्रवृत्तियों से पीड़ित है। इसीलिये वे नगरों की अपेक्षा गांवों में अधिक रहते थे और अपनी प्रभावना द्वारा जनता के अज्ञानान्धकार को काट कर उसको सत्य-सूर्य का दर्शन कराने का सफल प्रयत्न करते थे। आचार्यश्री के जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग आये जब वे जाना तो कहीं चाहते थे किन्तु चले कहीं गये और उन्होंने बिना किसी विशेष आयोजन अथवा उपचार के सामान्य ढंग से सामान्य भाषा में सामान्य जनता को उपदेश देकर चोरी, जुआ, बलात्कार जैसे कुकर्मों से मुक्त कर उसको सात्विक कर्मों की ओर प्रेरित किया।

आचार्यश्री लब्धिसूरि जी महाराज की वाणी में कुछ ऐसा जादू था, उनकी

प्रभावना मे कुछ ऐसी क्षमता थी, उनकी वाणी में कुछ ऐसी मधुरता थी कि सुनने वाला चाहे कितना भी निर्मम, हठी, प्रतिगामी अथवा अधर्मी क्यों न हो परन्तु उनके उपदेशों को सुनने के बाद वह उनका प्रशंसक हो जाता था। यद्यपि वे स्याद्वाद के समर्थक, जिन शासन के अनुयायी और जैन धर्म के प्रचारक आचार्य थे परन्तु उन्होंने कभी किसी को कोई कुवचन नहीं कहा। यदि उनके तर्कों, सिद्धान्तों अथवा उपदेशों से असहमत होने के कारण कुसमय में भी कोई व्यक्ति उनके पास शास्त्रार्थ करने आया तो उन्होंने उसे बड़े स्नेह के साथ पास बुलाया, धैर्य और प्रेमपूर्वक उसके तर्कों को सुना तथा बड़ी सहिष्णुता के साथ उन्होंने अपने तर्कों द्वारा उसके मत का खंडन अथवा अपने सिद्धान्तों का मंडन किया। किन्तु ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब आचार्य जी ने प्रतिपक्षी को पराजित करने के पश्चात् उसके पक्ष का मंडन करते हुये यह भी प्रमाणित कर दिया कि उसका पक्ष वास्तव में ठीक है परन्तु विषय के प्रति लगन और रुचि न होने के कारण वह अपने पक्ष का मंडन नहीं कर पाता। ये प्रसंग आचार्य श्री के व्यक्तित्व के अजातशत्रुत्व का परिचय देते हुए उनको मानव-मात्र का मित्र प्रमाणित करते हैं।

आचार्यश्री लब्धिसूरि जी न केवल अप्रमित विद्वान्, वाग्मी, असाधारण साहित्य-स्त्रष्टा और अपार ज्ञान-राशि की खान थे वरन् वे ममता, उदारता, मिलनसारिता और निस्पृहता के भी प्रतीक थे। उनमें हमें एक श्रेष्ठ मनुष्य, श्रेष्ठ अन्वेषक, विचारक, ज्ञान-पिपासु, शान्ति और अहिंसा प्रचारक जुझारू आचार्य के दर्शन होते हैं। वे मानवता के अवतार, जन-जन के शिक्षक और संयमी जीवन व्यतीत करने वाले महापुरुष थे। अपने उपदेशों और ग्रंथों के माध्यम से उन्होंने धर्म, न्याय और आगम के सिद्धान्तों को शुद्ध तथा सही रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने अपनी निष्ठा, साधना, त्याग और समर्पित जीवन का एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया जो उनको लोकापकारी आचार्य के रूप में स्थापित करता है। इसलिये उनके द्वारा व्यक्त विचारों का आदर केवल जैन समाज में ही नहीं वरन् जैनेतर समाज में भी होता है।

पूज्य श्री आचार्य लब्धिसूरि जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी साधक थे। वे आजीवन देश की अनेक शैक्षणिक, सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं से जुड़े रहे तथा अपने प्रखर पाण्डित्य, विलक्षण व्यक्तितत्व, सौजन्य, सद्व्यवहार, शील और सदाचार द्वारा अपने संपर्क में आने वाले व्यक्तियों के हृदय पर अपने उच्च विचारों की अमिट छाप डालने में सफलता प्राप्त की। यद्यपि वे विरक्तिमूलक ज्ञान-साधना के व्रती थे परन्तु अपनी भक्त्यात्मक रचनाओं में उन्होंने भक्ति की जिस

रसात्मक धारा को प्रवाहित किया है यदि एक ओर वह जन-मानस को व्यापक रूप से आप्लावित करती है तो दूसरी ओर वह उनको सगुणोपासक भक्तों के मध्य ले जाकर खड़ा करने में सहायक होती है। उन्होंने विविध राग-रागनियों में रचित अपने भजनों को संगीत से वेष्टित करके साधना के शुष्क तत्वों को भी सहज बना दिया है।

प्रसन्न और सन्तुष्ट रहने वाला व्यक्ति ही अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के दु:ख को दूर कर उनके ओष्ठों पर सरस हँसी बिखेरने में सफल हो सकता है। आचार्यश्री सभी को प्रसन्न देखना चाहते थे। अत: वे हमेशा प्रसन्न रहते थे और उनके मधुरोष्ठों पर स्मिति की सरस लहरी निरन्तर विद्यमान रहा करती थी। वे तत्वदर्शी विचारक, सरस्वती के वरद पुत्र, त्यागी, तपस्वी, अहिंसा की जीवंत मूर्ति, कर्मवीर साधक और क्रोधजयी विचारक थे। उनकी वाणी में मृदुता तथा चेहरे पर हमेशा संतोष की रेखायें विद्यमान रहती थीं। इसलिये जनता रस-मग्न होकर उनके विचारों को सुनती, गुनती और अपनाती थी। अपने इन गुणों के कारण आचार्यश्री विरल-विशेष महापुरुष के रूप में "यावच्चन्द्र दिवाकरो" परिगणित होंगे और आलोचक तथा आराधक उनके सम्बन्ध में हमेशा कहते रहेंगे:-

"सिंहो के लेंहड़े नहीं, साधुन चलै जमात"।

वास्तव में पूज्यपाद आचार्यश्री विजयलब्धि सूरि जी महाराज जैसे संत साधक जमात में नहीं चलते। गुदड़ी में लाल होते तो हैं परन्तु बहुत कम। हमारे लालचन्द जी इन्हीं लालों में से एक लाल थे। इत्यलम्।

लब्धिभक्तामरस्तोत्रम्

रचयिता-साध्वी हंसश्री

श्रीबालशासन सुनामक खेटपूर्या
पीताम्बराख्य जनकी जननी च मोती।
धर्मः सदैव कुरुतः शुभ-बोधिमन्ता।
बालाम्बानं भवजले पततां जनानाम्।।१।।

शान्तस्तयोः सुरुचिरः सुतलालचन्द्रः
बालोचयि सुमधुरं जननी प्रतीति।
तं स्तौति तत्स्तुतिमरं मम शिक्षयस्व
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।२।।

पूर्वात्तपुण्यवशतो जिनधर्मरागी
धन्यः कशेति न कदापि कुतीर्थिसंगम्।
मूर्खाद्विना शुभमणि सुविमुच्य काच
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्।।३।।

तेजोनिधिः सवदतीति मुहुर्भवेयम्
मातः सदाऽत्र भगवानिति मे महेच्छा।
तदभाववारिधि जलं नमिनोति कोऽपि
को वा तरीतुमवलम्बु निधिं भुजाभ्याम्।।४।।

आक्रीडने घरति साधुसुवेषमेषः
आडंबर प्रवचनस्य करोति बालः।
आत्मीय शक्तिमविचार्य हरि कुरडगी
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम्।।५।।

ज्ञानेऽस्य हेतुरसमः कमलाख्यसूरि ।
जीतश्च तस्य कृपया विरतेश्चरग्डः ?
माधुर्य मुदभवति यत् पिककाम्रकण्डे
तच्चारु चूतकलिकानिकरैक हेतुः।।६।।

दीक्षां ललौ सपदि लब्धिमुनिः स जातः
न्यायादिशास्त्रनिपुणोऽभवदाशु बुद्धया।

वादे जितः कुमतिवाणिगणो गतोऽरम्

सूर्यांशु भिन्नमिन शार्थरमंधकारम्।।७।।

किं मादृशी जड़मति स्तवने समर्था

प्रारम्भते खलु तथापि गुरोः प्रसादात्।

रम्यं लगिष्यति जने शतपत्रपत्रे

मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूद बिन्दुः।।८।।

दूरे स्तवो गुरु गुणैरुचिरोऽस्तुपूर्णः

यस्याभिधापि खलु पापगणान् निहन्ति।

आस्तां रविर्यतनुते सुप्रभापि तस्य

पदमाकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि।।९।।

शिष्याश्च तस्य मिलिता बहू बुद्धिमन्तः

प्रीत्या कृता निजसमाः श्रुतदानदक्षैः।

किं शस्यते स भुवने धनवान् स्वभृत्यम्

भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति।।१०।।

येनापदेशभरतः प्रतिबोधिता ये

तेसज्जना न कुमतं स्पृहयन्ति दुष्टः।

स्वादिष्टपानममृतस्य विधाय शुद्धम्

क्षारं जलं जलनिधेरशितुं क इच्छेत्।।११।।

त्वां काव्यदक्षत्रिह बीक्ष्य सुरज्जितत्वात्

सिद्धान्तसारगतमाशु हिं वाक् सुदेव्या।

कूर्चच्छलाच्च निहितेव कटाक्षयद्धि

यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति।।१२।।

ज्ञानप्रकाशकर एव दिवानिशं त्वम्

सत्तत्व चंद्र इह राजसि मोददस्त्यम्।

दीयेत किन्नु मय रात्रिकरोपमानम्

यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम्।।१३।।

ये ॰मांसखादनरताः कुमतेषु सक्ताः
मिथ्यात्विनः कुगुरुमोहित दुष्टलक्षाः
ये सन्ति चैत्यविमुखा हि विना भवन्तम्
कस्तान् विवारयति संचरतो यथेष्टम्।।१४।।

ब्रह्मव्रतं धरति यः खलु नैष्ठिकं च
श्रीस्थूलभद्र मुनिवर्ज्जित कामदेवः।
नार्याः कटाक्षभरतो न मनाक् सक्षुब्धः
किं मन्दराशि शिखरं चलितं कदाचित्।।१५।।

क्रोधोग्रप्रमदनीय दशारहितः
स्नेहीय तैलवियुतोऽपि तमोनिहन्ता।
सन्मार्गदर्शक सुबोधि विभाविबुद्धो
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ। जगत्प्रकाशः।।१६।।

सूरेः पदोदयगिरौ हि सदैव दीप्तः
नास्तंगमी दुरित राहु मुखे न गन्ता।
सुष्टुप्रतापसहि तोऽपि न तापकृत् त्वम्
सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्र। लोके।।१७।।

गर्विष्ठवादि कितवस्य भयप्रदं यद्
आनंददं भयति भव्यचकोरचित्ते।
अन्तर्ननर्त मम वीक्ष्य तवास्यरूपम्
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाकबिम्बम्।।१८।।

त्वय्यत्र सत्यपि कुवादिगजेन्द्रसिंहे
मिथ्यात्विवृन्दकरिभिश्च किमत्र कार्यम्।
जाते पि सर्व सुखदेऽत्र सुभिक्षकाले
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनमैः।।१९।।

चारित्रदायिनि यथा त्वयि मे मनोऽलिः
लग्नो मनाग् नहि तथान्य जने कदापि।
रत्नाप्तितो भवति यश्च मनः प्रमोदः
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि।।२०।।

स्याद्वादयुग् जिनवचस्तव वक्त्र तं जातं
श्रृणवन्ति ये च मुदिताश्चकिताश्च चित्ते।
तेषां दृढाशयभृतां कुगुरुः कदाचित्
कश्चिन्मनो हरति नाऽथ भवान्तरेऽपि।।२१।।

पृथ्व्यां ह्यनेक कवयः खलु सन्ति किन्तु
काव्ये कृतिः सुविमला स्ति तवैवचैका।
अन्या दिशश्च बहु लादपि सूर्यबिम्बम्
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरंदशु गुजालम्।।२२।।

त्वद् देशनाद्भुत छंढांहि समीक्ष्य वर्या
व्याख्यान वाक्यतिपदे गुरुणा नियुक्तः।
हे वाकपते। तव विनाऽत्र वरोपदेशम्
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थः।।२३।।

श्रीद्वादशारनयचक्र महत सुशास्त्रम्
प्राकासि शुद्धमतुलं त्वयका विधाय।
स्पष्टं ह्यनेन तव चारु नयान्वितं वै
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति, सन्तः।।२४।।

लक्ष्मीः स्थिरा त्वयि सुभर्तरि थित् स्वरूपा
विष्णोरमा च चपला हि सुतः स्वतंत्रः।
दासस्तु सैष इह तेच ततो वदामि
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि।।२५।।

मूर्त्यादि मंडन सुशास्त्रविधायकाय
न्यायान्त तत्त्व सुविभाकर गुम्फकाय।
मात्रा सहेह ममसंयमदायकाय
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय।।२६।।

मध्येऽम्ठारं गतरवौ सति तत्प्रभावात्
तेजोयुतो जिनमते हयुदितस्ततस्त्यम्।
दोषाशयुक्तु सुचरितैरपरैश्च यिज्ञै
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि।।२७।।

पश्चात् सुबद्धवरनीलवितानकस्य।
व्याख्यानपीठा शुचिसंश्रितसूरियस्य।
वक्त्रं सुराजति सुधाकरवत् सुगौरम्
बिम्बं खेरिवपयोधर पार्श्ववर्ति।।२८।।
स्फूर्जन्मयूखनिकरो हि यथा निलीनः
तदवज्जनेषु निहितस्त्व्ययकोयदेशः।
मिथ्यात्वगाढ़तिमिरं त्वरितं निहन्ति
तुंगोदयाद्रि शिरसीव सहस्त्ररश्मेः।।२९।।
दीप्तेश्चतारक गणैरिव साधुचन्द्र
शिष्यैर्वरैर्विनयि बुद्धि प्रभावकैस्तैः।
सदवेष्टितं तव सुदेहमहो सुरम्य
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्।।३०।।
वद भालमेतदनिमेष हिशैक्षणीयम्.
रेखत्रिकं च परमत्र स्थितं च दीर्घम्।
मन्ये मुनीन्द्र ! लघुभावि तवेदमुच्चैः
प्रख्यापयेत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्।।३१।।
वाणीं तवोच्च भववारिधिंयानतुल्या
माकर्ण्य धर्मिजमाआशु गतीं विदेहे।
आर्हन्त्य माप्य यधिगच्छति तत्पदे ऽधः
पदमानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति।।३२।।
वात्सल्यभाव करुणातिगुणानुरागा
इत्यादिकास्त्वयि गुणा न तथा परेषु।
यादृग् दिवाकरविभा हि तमोनिन्त्री
तादृक् कुतो ग्रणस्य विकाशिनोऽपि।।३३।।
सादिभः कटोसणनृपादि जनैर्नतौ हि
श्रीहंस पद्मशुभचिन्हभरौ सुपूज्यो।
भीष्माद् भवादसुमतां तव पादयुग्मौ

दृष्टवा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्।।३४।।

निर्लोभिधुर्य तव भक्तजनं सुबुद्धम्

मिथ्यात्ववारिभरिता बहुलोलुपा वै।

तृष्णानंदी हि कुटिला छलवपक्कपर्णा

नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रिततं ते ।।३५।।

येनेह पार्वतीधवादिक योगमग्नाः

दामोदरादि सुरदानवमानवेन्द्राः।

दग्धा हि तं प्रतिभयं मदनानलं द्राक्

त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ।।३६।।

आक्रोशरूपविकराल फर्गाग्रदेहः

सौहाद्र नाशक कटूक्ति विषाक्तदंष्ट्र।

क्रोधोरगः स्पृशति किं भयदो हि तं च

त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः।।३७।।

यन्नैकजन्मसु पुरार्जितकर्म पुज्जो

द्राग् दत्त ताडनवधिदिक तीव्रदुःखः।

क्लिष्टश्च दुष्ट निबिडः प्रखरार्कतापात्

त्वत्कीर्तित्तमइवाशु भिदामुपैति।।३८।।

सदगामिनश्च शुभमान सबद्धरागाः

श्री शुक्लपक्षसहिताश्च विवेकयन्तः

अत्यच्छमौक्तिकफलानि सुशिष्यहंसः

स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभन्ते।।३९।।

तिर्थकाच नारक निगोदसुकगृदानाम्

उत्पत्तिवार्द्धक मृतिप्रदकर्मणां च।

निर्बाधमययपदं भविनो सुभाग्या

त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति।।४०।।

धन्वंतरीसम सुर्वद्यमिहाप्य च त्वाम्

त्वद्येशनामृत रसायनमेव पीत्वा।

दुःसाध्य पापघनरोग विमुक्त जीवा

मर्त्या भवन्ति मकरध्वज तुल्यरूपाः।।४१।।

ध्यायन्त्यचिन्त्यमयिमानमि हैकचित्तात्

रत्नत्रिकस्यनिलयंच गुणास्पदं त्वाम्।

ते मुक्तिमाप्य सुविमुच्य हि कर्मपाशान्

सद्यः स्वयं विगत बन्ध भया भवन्ति।।४२।।

स्वर्गापवर्ग सुखभोग गणो हि हस्ते

दुष्टान्तरारि भय एव न तस्य चित्ते।

भवोच्चता सुरचितं भविमोहदं च

य स्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते।।४३।।

लब्ध्याख्यसूरि गुणपुष्पभरा सुमाला

हंसाश्रिया सुमनसा ग्रथिता मयेयम्।

कण्ठे दधाति सुभगः खलु योऽनुरागात्

तं मानतुंग मवाश्न समुपैति लक्ष्मीः।।४४।।

प्रशस्ति

लब्ध्या जन्मशताब्धाश्च निमित्तं लब्धिसूरिणाम्

लब्धिभक्तामरस्तोत्रं, लब्धिदं सर्व सौख्यदम्।।१।।

नंदश्रीति पूज्याया मातृगुरोश्च शिष्यया

सूरिलब्धिं प्रभावेण दृष्ध हंसाश्रियामया।।२।।

पञ्चमकालामृतम्।

पंन्यासप्रवर : श्री मुक्तिविजयजी गणिवरः

समर्थविद्वद्वर्याचार्यशिरःसमर्चितशासनः स्थूलभद्र इव संनाशितसकलजगन्नाशककामदेवः; समुद्र इव सम्यक्‌दर्शनज्ञान-चारित्रलक्ष्मीप्रसूतिः, जन्मभूः तत्त्वन्यायविभाकरादिग्रन्थानाम्, समुत्पत्तिः संमतिसोपानादिशासन-प्रभावकग्रन्थानाम्, उदयशैल आराधकमित्रमंडलानाम्, धौरेयो धर्माराधनसंरक्षणप्रभावनादिकार्यरतधार्मिकाणाम्, अग्रणी न्यायादिषट्‌दर्शनशास्त्रपाठिनाम्, परास्तैदंयुगीनजाड्यान्धकारः, कृतानेकप्रभुप्रतिष्ठोपधानादिशासनप्रभावनाकार्यो, वर्तमानकालीनशासनप्रभावक आज्ञानिरपेक्ष द्रव्यक्षेत्रकालभावप्रभुत्वप्रतिपादकानां पुरः स्थापितशास्त्रमहत्त्वो लब्धिसूरिर्बभूव।

आशैशवं पूज्यपादानां क्षयोपशमोऽसाधारण आसीत्। न्यायव्याकरणकाव्यकोशादिशास्त्राध्ययन साधुधर्मग्रहणानन्तरं सम्यक्तया सद्गुरुनिश्रायामेव तेन कृतम्। परमगुरुणा निस्पृहचुडामणिना कमलसूरिवर्येण व्याख्यानवाचस्पतिपदं तस्य वाग्‌लब्धिं दृष्ट्वा स्ववरदहस्तेन तस्मै दत्तम्। अनुष्ठानादिधर्मकार्यकरण तुंगिकानगरीसदृश्यां छायापुरीनगरायां स्थापितः तृतीयपदे सूरिनाम्नि तेनैव परमगुरूणा महाडबरेणैकाशित्युत्तरैकोनविंशतिशततमे वर्षे प्रभावक एष महापुरुषः।

स्वसम्यक्‌दर्शनशुद्धये भव्यजनप्रतिबोधार्थं परमपुरुषप्रणतप्रभुशासन-प्रभावनायै च बिहृतोयं सूरि र्महाराष्ट्र-सौराष्ट्र-गुर्जरमेवाड़ मारवाड़ पंजाबादिदेशेषु। वादिमतगजकेशरी सूरिसम्राड्यं शासनप्रभावक-पूज्यपादाभयदेवसूरि-प्रतिष्ठिततभनपार्श्वनाथप्रभावित त्रंबावटीनगरीसमीपवर्तिवटादरानगरे केनचिद् विदुषा पंडितप्रवरेण वेदशास्त्रविषये वादमकार्षीत्। शासनोन्नतिकारिणी भव्यजीवमिथ्यात्वांधकारविध्वंसिनी वृता विजयवरमाला विजिगीषुणा तेनैव महात्मना।

पंचविंशतिवर्षपुर्वं राजस्थाने विमानोत्तरणस्थलाद्याधुनिकरम्यस्थानसुशोभिते लक्षाधिकमानवसमूहविभूषिते योधपुरे नगरे पूज्यपादा द्विनवतियुतैकूनविंशतिशततमे वर्षे वर्षावासं बभूवुः। एकस्मिन् दिने न्यायनिपुणो व्याकरणविशारदः पंडितः कश्चित् तत्र समायतः। सूरिवर्यैः सप्रेम स आहूतः। तेन तत्कालं शास्त्रार्थाय गीर्वाणगिरा कतिपयवाक्यानि गम्भीरप्रश्नपुर्वकानि प्रोक्तानि। सूरिपुरंदरा आहुरधुना भीक्षाजेमनकालोवर्तते। पश्चादद्यैवापराहणे वयं शास्त्रविषयिणीं न्यायपंचावयवाक्यपूर्विकां चर्चां करिष्यामः। विद्यामदमतांधः सः पण्डित उवाच। अधुनैवाहं शास्त्रार्थं करिष्यामि भवतामिच्छाभवेच्चेत्, नो चेद् गच्छाम्यहम्। तत्कालं पूज्यपादैः स्याद्वादसुधावर्षिणी सप्तनयसप्तभंगीगर्भितानेकान्तवादप्रविपादिकैकान्त-मतोन्मूलिनी मेघधारासदृशी

गीर्वाणवाग्धारा छोटिता। चतुरचेत:चमत्कारकारिणीं स्वमतखण्डिनीं गुरुवाग्धारां श्रुत्वा चकित: पण्डित: पूज्यपादाननमदकथयश्चाहो मयानुचितं कृतं। क्षमयाम्यहं भवत:। पूज्यपादा: किंचित् विहस्य जगु:। भवानपि समर्थ: पण्डित:। जयपराजयविचारो मनसि न कर्तव्य:। गुरुवर्याणामीदृशमौदार्यमवलोक्य पूज्यपादगुणान् मनसि धारयन स्वस्थाने सप्रेम जगाम। कीदृशी हृदयविशालता। अद्यापि योधपुरनगरस्था: शरबतमल्लादिसुश्रावका गुरुगुणान् गायन्त: सन्त: सुप्रसिद्धामेतत्कथां कथयन्ति। पंजाबदेशे मुलताननगरे स्थितानां पूज्यपादानां मांसाहारनिषेधकान्यपुर्वाणि प्रवचनानि बभूवु:। तस्मिन् प्रवचने बहवो यवना अपि समाययु:। केचिद् यवना: प्रतिबुद्धा: सन्त आजीवनं मांसाहारं तज्यजु:। केचिद् मांसविक्रेतारो यवना: क्रुद्धा:सन्त: पूज्यपादानां प्राणनाशायागता: किन्तु पूज्यपादानां प्रसन्नं मुखं दृष्ट्वोपदेशं च श्रुत्वा भक्तिपूर्वकं नेमु:। सत्यं व्यतिकरं कथयित्वा गुरुवर्यान् क्षमयित्वा च ते गता:।

गुरुदेव महान्

-आचार्यश्री जयंतसूरि जी म.

लब्धि सूरिश्वर गुणनी खाण
प्रातः उठीने करो गुणगान।
नाम जपंता कोटी कल्याण
दिन दिन पाये कर्मनी हान,
उदार सरलता गंभीर महान्,
निंदा विकथा जरा नहि जान ।।१।।
दोष वाद मां मूक समान,
गुण गावामां गुणी महान्,
गुरु भक्ति मां बनो एक तान,
मलशे तमने समकित दान ।।२।।
प्रभु वाणी नुं कराव्युं पान,
आव्युं हमारूं ठेकाणे भान,
प्रगट करावों अमारूं ज्ञान,
विनती करेछे तारो जजमान ।।३।।
मोहराजाओ कर्यो हेरान,
आत्मबागने कर्यो वेरान
तारी कृपा जौ प्रगटे अमान,
अर्मानो वालु कच्चड धाण ।।४।।
तारो उपकार अम पर महान,
गावुं तमारा नित्य गुणगान,
आत्म कमल मां बनो अेक तान,
जयंत करे छे सदा सन्मान ।।५।।

प्रभुता से प्रभुता दूर-लघुता में प्रभुता हजूर

संसार में प्राणी जन्म लेकर अंतकाल भी पा लेते हैं किन्तु जो आत्मा अरिहंत परमात्मा के शासन का मर्म पाकर जीवन अमृत सदृश बना लेते हैं वे आत्मा अंतकाल पा लेते हैं तो भी सदा अमर बनकर जागृति को स्मृति दिलाते हैं।

वि.सं. १९९७ वर्ष का वह प्रसंग स्मरणीय बन गया जब राजस्थान के फलोदी नगर में जैन शासन संरक्षक महान् धुरंधर पू. आचार्यश्री लब्धिसूरीश्वर जी म.सा. अपने अनेक विद्वान् शिष्य परिवार से समलंकृत चातुर्मास हेतु विराजित थे। आपकी प्रतिभा, ओजस्वी वक्तृत्व कला, गांभीर्यता आदि अनेक गुणों से जनता संतुष्ट थी, प्रभावित थी और शासन चरणों में गजब की समर्पितता थी। इन दिनों मध्यान्ह समय में नगर के प्रबुद्ध लोग रेखचंद जी कोचर, लक्ष्मीलाल जी वैद आदि आचार्यश्री से विचार-विमर्श करते थे- शंका समाधान करते थे। इसी क्रम में एक दिन लक्ष्मीचंद जी वैद ने पू. आचार्यश्री से प्रश्न किया, "साहब जी, वर्तमान समय में जितने भी जैन साधुसंत हैं वे सभी त्यागी, साधक आदि गुणों से युक्त हैं फिर भी मैं इनमें से उत्कृष्ट त्यागी प्रभावक का विशिष्ट परिचय जानने की जिज्ञासा रखता हूँ।" सहज प्रश्न सुनकर वात्सल्यता एवं उदारता के धनी पू. आचार्यश्री लब्धि सूरीश्वर जी ने प्रसन्न मुद्रा में कहा कि अभी कच्छ वागड़ प्रदेश में विचर रहे आचार्यश्री कनकसूरीश्वर जी का संयम, तप, त्याग, क्रियादि उत्तमोत्तम और बेजोड़ है।

आशा के विपरीत श्री लब्धिसूरीश्वर जी के मुखारबिंद से यह सुनकर सभी आश्चर्यचकित और मुग्ध थे प्रभुता के स्वामी पू. लब्धिसूरि जी द्वारा अपने से छोटे अन्य आचार्य के किए गए गुणानुवाद से। यह सुनते ही लक्ष्मीलाल जी वैद व उनके पुत्र मिश्रीलाल जी ने पुलकित हृदय से पू. आचार्यश्री कनकसूरी जी म.सा. के सानिध्य में दीक्षा अंगीकार करने का संकल्प लिया। समय बीतता गया। यह शरीर विनाशशील है रोगान्तक से घिरा हुआ है। लक्ष्मीलाल जी दमा रोग से पीड़ित हो गए जिसके कारण संयम लेने के दृढ़ संकल्प को पूरा नहीं कर पाए किन्तु उनकी आत्मा ने वैराग्य को वरण कर लिया था। निधन के पूर्व वे अपने पुत्र मिश्रीलाल जी को संयम जीवन स्वीकार करने के लिए दृढ़ बनाते गए।

इसी समय क्रम में पू. आचार्यश्री लब्धिसूरीश्वर जी म. की गंभीर वाणी से प्रभावित हो अक्षयराज जी लूंकड़ ने संसार त्यागने का मनोरथ किया और अपने श्वसुर मिश्रीलाल वैद से परामर्श किया। अंततः वि.सं. २०१० में मिश्रीलाल जी वैद अपने सुपुत्र के साथ तथा अक्षयराज जी लूंकड़ अपनी पत्नी व दो सुपुत्रों

के साथ कच्छ वागड़ देशोद्धारक प.पू. आचार्य भगवंत श्री कनकसूरि जी म.सा. के पावन हाथों संयम ग्रहण किया। लक्ष्मीलाल जी वैद मुनि कमलविजय जी और उनके सुपुत्र नथमल मुनि कमलहंस विजय जी तथा अक्षयराज जी लूंकड़ वर्तमान में आचार्य श्री कलापूर्णसूरि जी व उनके सुपुत्र ज्ञानचंद व आसकरण क्रमशः मुनि कलाप्रभविजय जी व मुनि कल्पतरु विजय जी म. आज संयम यात्रा को सुसाध्य बना रहे हैं।

पूज्यपाद आचार्य भगवंत श्रीमद् कनकसूरि जी म.सा. की दीक्षा पर्याय में पर्याप्त लघु होते हुए भी गुणानुरागी कविकुलकिरीट पूज्यपाद आचार्य भगवंत श्रीमद् लब्धिसूरि जी.म.सा. ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। उनके हृदय में गुणानुराग कितना ज्वलंत था वह इस प्रसंग से प्रतीत होता है।

पूज्यपाद आचार्यश्री लब्धिसूरीश्वर जी म.सा. का जीवन दर्शन अमर रहो।
पूज्यपाद आचार्यश्री कनकसूरीश्वर जी म.सा. की यशकीर्ति अमर रहो।

पूज्यपाद आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय लब्धि सूरीश्वर जी का पवित्र सन्देश

यौवन एक साधन है। साधन का फल साधक के ऊपर निर्भर है। जिस साधन का सदुपयोग मुक्तिदाता हो सकता है उसी साधन का दुरुपयोग दुर्गति का कारण भी बन सकता है इसलिये प्रत्येक युवक को चाहिये कि वह यौवन रूप साधन का उपयोग शासन सेवा में, धर्माराधन में करे। विश्व भर में उससे अच्छा कोई भी नहीं, जिसके यौवन का सदुपयोग हो सके।

अपना कर्तव्य सम्भालो। आँखों के सामने धर्म अपमान देखने से उसके निवारणार्थ मर मिटना अच्छा है। कृत निश्चय, सहनशील और इन्द्रियनिग्रही बनकर मैदान में आओ, धर्म प्रेम का कवच तुम्हें सुरक्षित रखेगा। अखंडता और स्वच्छन्दता का परित्याग करके समझ लो कि शासन की आज्ञाओं की परवशता ही कल्याण मार्ग है। बस इसी रास्ते पर निर्भयता से चलो......

विजय तुम्हारी है.

महान विभूति के साथ बीते क्षण

-शासन प्रभावक सूरीश्वर जी

पू. आचार्य देव श्रीमद् विजयलब्धि सूरीश्वर जी म. अनेक दिव्य शक्तियों के स्वामी थे जिन्होंने अनेक विध तरीके से जिन शासन की सुन्दर प्रभावना की।

आचार्य विजय जम्बूसूरि

-पवित्र मूर्ति

मानवीय सद्गुणों से विभूषित आचार्य भगवंत श्रीमद् लब्धि सूरीश्वर जी समता एवं उदारता की पवित्र मूर्ति थे।

आचार्य भुवन तिलकसूरि

-सागरवर गंभीर

पू० पाद आचार्य भगवंत श्रीमद् विजयलब्धि सूरि जी म० की विद्वत्ता सागर सी अपार व गंभीर थी जिनकी सागर पर गंभीर प्रकृति युगों-युगों तक प्रेरक रहेगी।

पं० कनक विजय गणि

-गुणनी खाण

लब्धि सूरीश्वर गुणनी खाण
प्रातः उठीने करो गुणगान।

आचार्य जयंत सूरि

-असाधारण महापुरुष

कविकुलकिरीट पू० आचार्य देवेश साहित्य के असाधारण सर्जक थे। जिन्होंने शारीरिक शिथिलता के बावजूद विभिन्न भाषाओं में साहित्य रचना द्वारा ज्ञान पिपासा शांत की, वे मिलनसरिता के स्वभाव से ओत-प्रोत थे और थे लगणी प्रधान।

आचार्य विजय प्रसन्नचन्द्र सूरि

अंतर चक्षु से पहचान : पूज्य आचार्यश्री विजयलब्धि सूरीश्वर जी के नाम से तथा उनकी साहित्यिक कृतियों से मैं पूर्णतः परिचित था। किन्तु दर्शन का अवसर नहीं मिला था। एक बार बम्बई प्रवास के दौरान हमारे उत्साही कार्यकर्ता हिन्दी प्रचारक श्री रावलमल जी जैन 'मणि' साथ थे। बम्बई पहुंचने के बाद एक बार उन्होंने आग्रह किया 'भट्ट सा. चलिए मेरे गुरुदेव आचार्य लब्धिसूरि जी म.

के दर्शन कर आएं वे अभी अस्वस्थ भी हैं"। आचार्यश्री के दर्शन की इच्छा मैं भी रोक न सका। शाम को चलने का कार्यक्रम बनाकर मैं अपने कार्यों में व्यस्त हो गया। शाम तक मणि जी ने आचार्यश्री के विराजमान होने की जगह की जानकारी प्राप्त कर ली थी। किन्तु उस दिन हम नहीं जा सके। दूसरे दिन सुबह कार्यक्रम तय हुआ और हम यथासमय वहां पहुंचे। एक ऊंचे पाट पर एक महात्मा लेटे हुए थे आंखों पर पट्टी बंधी हुई थी। मणि जी ने एक महाराज श्री जयंतविजय जी (जिनका नाम बाद में मालूम हुआ) को वंदन किया और उनसे मेरा परिचय कराया। महाराजश्री के साथ हम आचार्यश्री के पास आये। मणि जी ने विधिवत् प्रणाम किया और उनका चरण स्पर्श कर पैर दबाने लगे। महात्माश्री जागृत से हुए। चेहरे पर मुस्कान दौड़ गई उन्हें पहचानते हुए कहा " अरे रावल है न, मांगी लाल का लड़का, कब आया, कैसे हैं तुम्हारे पिताजी, दादाजी," एक ही सांस में वे पूछ गए थे। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं था कि न देखते हुए भी इन्होंने मणि जी को कैसे पहचान लिया?" मैं बरबस पूछ ही गया " साहेब जी, न देखते हुए भी मात्र स्पर्श से इन्हें कैसे पहचान लिया जबकि इन्होंने अभी कुछ बोला तक नहीं और फिर आपको स्पर्श करने वालों की संख्या सीमित भी तो नहीं है।" मेरे प्रश्न पर आचार्यश्री चौंके और कहा " इन हाथों ने मेरी बड़ी सेवा की है पालीताणा में साथ रहा है। यह शरारत भी खूब करता रहा है। इसने एक बार पालीताणा में मेरी उंगली पकड़कर सिद्धाचल जी की यात्रा की जिद् की थी भक्तामर का पाठ सीखा था। इसीलिए मैं स्पर्श नहीं भूल पाया था। मेरी ऊपरी आंखें बंद हैं तो क्या हुआ अंतर चक्षु तो खुले हुए हैं जो इसे पहचानता है" मैं यह सब सुन मुग्ध था। फिर श्री जयंतविजय जी ने मेरा परिचय कराया तब आचार्यश्री से काफी देर तक चर्चा होती रही। मुझे और आश्चर्य तब हुआ जब उन्होंने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के कार्यकलापों, भारतीय कविताओं पर मुझसे विशद् चर्चा की। मैं काफी आनन्दित हुआ। चलते समय सज्झायमाला की एक पुस्तक मंगाकर हस्ताक्षर और धर्म लाभ लिखकर उन्होंने दिया। मैं वह क्षण कभी नहीं भूल सकता।

मुझे गौरव है कि महान् संत का मैं आशीर्वाद प्राप्त कर सका हूँ।

मोहनलाल भट्ट

प्रधानमंत्री राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

साहित्य उपकारी

भक्ति की रसात्मक वाग्धारा को पूज्य आचार्य लब्धिसूरि ने जन मानस के व्यापक धरातल पर अवतरित कर संगीत और माधुर्य से मंडित कर साहित्य को

उपकृत किया है। दद्दा का शत-शत प्रणाम.

मैथिली शरण गुप्त

महाकवि की विशालता : भाई रावलमल जी जैन "मणि" ने एक पुस्तक भेंट की थी "जैन काव्य मंजूषा"। उसमें आचार्यश्री विजय लब्धिसूरि जी, ज्ञान विमल सूरिजी, समयसुंदर जी, पद्मविजय जी आदि अनेक महापुरुषों की रचनाऐं थीं, पढ़ते-पढ़ते एक रचना पर रुका, उसके शब्द थे-

तू चेत मुसाफिर चेत, क्यों मानत मेरा मेरा है।
इस जग में नहिं कोई तेरा है, जो है सो सभी अनेरा है।।

इन वाक्यों को कई बार पढ़ गया, लगा कि मेरा अंतर कुछ बोल रहा है। मैं खो गया चिन्तन की गहराइयों में। इन्हीं दिनों एक बार प्रसंगवश बम्बई जाने का अवसर आया। वहां एक जैनबंधु, जो मेरे परिचित थे, ने बातचीत के दौरान जैनाचार्य श्री लब्धिसूरि जी महाराज के प्रवचनों की जोरदार चर्चा की। मुझे उनकी पंक्तियां स्मरण हो आईं। मैंने उनसे मिलने का कार्यक्रम बनाया। मेरे मित्रों ने मुझे आचार्यश्री से मिलवाया। अनेक साधु-संतों से घिरे एक वयोवृद्ध महात्मा को देखकर मैं किंचित् सकुचाया। थोड़ी देर बाद वे मेरी ओर देख मुस्कुराये फिर परिचय, कुशल-क्षेम के साथ विचारों का आदान प्रदान चल पड़ा। मैं यह देखकर दंग रह गया जब उन्होंने मेरी कृति "रश्मिरथी" पर जानदार टिप्पणी की। विचार क्रम में जब मैंने आचार्यश्री से तू चेत मुसाफिर चेत जरा.. पर चर्चा की तो दूसरी गोष्ठी के लिए सहर्ष आमंत्रित किया। दूसरे दिन रात्रि अपने साहित्यिक मित्रों के साथ ऋषिवर से मिलने आया। मैं महसूस कर रहा था कि देह की शिथिलता के बावजूद वे अंतर के आनंद से ओतप्रोत हैं। विचार गोष्ठी चल पड़ी सूक्ष्म दार्शनिक सूझबूझ के साथ और एक-एक शब्द छू जाते थे मेरे मन को। इस गोष्ठी में मैंने उन्हें आत्मसात् कर लिया था। सूरिदेव लब्धिविजय आचार्य की साधना को पढ़ा है, देखा है स्वयं उन्हें गाते हुए और उसमें गोते लगाते हुए। उन्होंने अपनी वैराग्यमयी ज्ञान साधना को सगुण भक्ति का रूप दिया, भक्ति को सरस काव्य का कलेवर प्रदान किया और काव्य को श्रुति मधुर संगीत के आवरण में सहृदय संवेदय बनाया।

महाकवि की विशालता को शतशः अभिनंदन है।

रामधारी सिंह "दिनकर"

(प्रभावी आचार्य लब्धिसूरि श्रद्धांजलि अंक से साभार)

छात्रों के प्रति अगाध वात्सल्यता : बात उन दिनों की है जब मैं ओसियां (राजस्थान) में पढ़ता था। पालीताणा स्थित ओसियां तीर्थ पेढ़ी शाखा

के मास्टर श्यामजी भाई ने मुख्याध्यापक को सूचना भेजी कि ओसियां मंडली को पालीताणा आना है। निश्चित समय हम पालीताणा आए। पर्युषण पर्व का समय था। आरीसा भवन में मंडली को रात्रि भक्ति-भावना की रचना का दायित्व सौंपा गया था। वहां विराजित पूज्य आचार्य श्रीमद् लब्धिसूरि जी म. के दर्शनार्थ सहपाठी श्री रावलमल जैन के साथ गए। पू. उपाध्याय श्री जयंत विजय जी म. ने हम छात्रों से वार्ता की। रावलमल जी से पूर्व परिचित होने का लाभ यह हुआ कि पू. उपाध्याय जी ने तुरंत पू.आचार्य श्री के दर्शन का लाभ दिलाया। भाई रावलमल को जिस स्नेह से पू. आचार्यश्री ने स्पर्श किया उसे देख हम मुग्ध थे। छोटे-छोटे हम छात्र क्या समझते। उन्होंने रावलमल से धार्मिक अभ्यास की प्रगति बावत पूछताछ की। पंचप्रतिक्रमण की जानकारी देते ही आदेश दिया कि कल सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में तुम्हें (रावलमल को) 'अजितशांति' बोलना है। पूज्यश्री ने फिर क्रम से हम सभी छात्रों से जानकारी ली और योग्य मार्गदर्शन किया। रात्रि में ओसियां मण्डली का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। मंडली ने "आव्यो दादाने दरबार" पर भक्ति नृत्य प्रस्तुत किया। दर्शक श्रोताओं से मंडली को अधिकतम सराहना मिली इससे कहीं अधिक जब मास्टर श्यामजी भाई ने हमारे संगीत मास्टर बाबूलाल जी को आकर कहा कि भक्ति के बाद सभी छात्र आचार्यश्री के पास जायेंगे। रात्रि श्यामजी भाई के साथ हम सब पू. आचार्यश्री के पास गये थे। आचार्यश्री ने "आव्यो दादाने दरबार" गीत गाने को कहा। प्रकाशचंद मुथा ने गीत प्रारंभ किया जब गीत गाया जाने लगा तब स्वयं आचार्यश्री मंडली के साथ गीत दुहराने लगे-आचार्यश्री पूर्ण लीन थे एक-एक अक्षर के साथ। पूज्य उपाध्याय जयंत विजय जी ने हमें बताया कि यह गीत आचार्य महाराज ने लिखी है तो हमारे हर्ष का अंत नहीं था। वह दृश्य आज भी ताजा है। दूसरे दिन सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के लिए हम इकट्ठे हुए। आचार्यश्री ने मंडली के छात्रों को अपने पीछे बिठाया आचार्य भगवंत की हम छात्रों के प्रति कृपा देख हम हर्षित थे। भीड़ भरे मंडप में प्रतिक्रमण प्रारंभ हुआ। साधु महाराज के साथ पहली बार प्रतिक्रमण का अवसर था। हमारे धार्मिक अध्यापक श्री प्रकाश चंद्र जी जैन हमें समझाते जा रहा थे।

प्रतिक्रमण के दौरान 'अजित-शांति' बोलने का अवसर आया। आचार्यश्री ने ऊंची आवाज में कहा-"मेरा विद्यार्थी रावलमल 'अजितशांति', बोलेगा।" हम कानाफूसी करने लगे। रावलमल का चेहरा घबराया हुआ था उसके मुंह से बोल ही नहीं निकल रहे थे। आचार्यश्री ने कहा "रावलमल, 'अजित-शांति' बोलो"। रावलमल बिल्कुल चुप विशाल जन समुदाय को वह देख रहा था। आचार्यश्री

ने हमारे धार्मिक अध्यापक प्रकाशचंद जी को इशारा कर बुलाया और थोड़ी देर बाद हम दो-तीन छात्र रावलमल के साथ आचार्यश्री के पास आ गए। आचार्यश्री ने रावलमल को स्पर्श कर पूछा- क्यों तुम्हें 'अजितशांति' आती है न। रावलमल ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी फिर पूज्यश्री ने कहा बोलो भई, घबराओ मत। बस फिर क्या था रावलमल ने सहसा आचार्यश्री का चरण स्पर्श किया और उसके मुंह से निकल पड़े शब्द अजि अं जिअ.....। सस्वर पाठ से पूर्ण शांति थी- मैं देख रहा था।

आचार्यश्री, रावलमल को स्पर्श किए हैं-जब उसने, इक्खाग विदेह...की गाथा बोली। आचार्यश्री उसके मस्तक पर हाथ फेर रहे थे।

हम सभी छात्र हर्ष विभोर हो उठे। प्रतिक्रमण के बाद मास्टर श्यामजी भाई ने रावलमल के साथ हम सबको गले लगाया कि विद्यालय का उसने मान बढ़ाया। तीसरे दिन प्रवचन में आचार्यश्री ने ओसियां के छात्रों, अध्यापकों की प्रशंसा की। संघ के लोगों ने हम छात्रों का बहुमान किया पालीताणा से विदा लेने जब हम आचार्य महाराज के पास गए तो बड़े प्रेम से कहा "समय व्यर्थ न गंवाना"। रावलमल के प्रति उनका अगाध स्नेह देख ईर्ष्या थी मन में" किन्तु उनके निस्पृह व्यक्तित्व ने हमें अंतर में अपने स्वभाव से परिचित होने की प्रेरणा दी। तब से आज तक वह दृश्य मैं नहीं भूल सका। इस घटना के बाद मैं पूज्यश्री का रागी बनता गया और उनके हर चातुर्मास में जाता रहा अंतिम क्षणों तक। आज उनकी कृपा अवर्णनीय है मेरे लिए। पू. गुरुदेव के चरणों में विनम्र श्रद्धांजलि।

लब्धि अनन से निकल, जिनवाणी बढ़ चली जिस घड़ी।
अम्बर से उस समय, सुमन धार चल पड़ी।।
कोटि कोटि दृग सजल, लब्धि की ओर अड़े थे।
हलचल कहीं न दिखी, सभी निस्तब्ध खड़े थे।।
जन ह्रदय में प्रवेश, मैत्री भाव की पवित्रता पर।
भाषा की भव्य झलक से, अहिंसा स्थापित कर।।

विठ्ठलरावसहस्त्रबुद्धे.

श्रद्धा ज्योति

पू० आचार्य देव श्रीमद् लब्धि सूरीश्वर जी निस्पृह आचार्य एवं श्रद्धा के ज्योति थे।

-काका कालेलकर

महान् अन्वेषक

आचार्य श्रीमद् लब्धि सूरीश्वर जी को मैंने सदैव एक श्रेष्ठ मनुष्य,

अन्वेषक, शांति एवं अहिंसा की स्थापना के लिए निरन्तर जूझनेवाले, ज्ञान पिपासा से प्रेरित मनीषी, श्रमण परम्परा में उदार आचार्य, जन-जन के शिक्षक और मानवता के संस्थापक, विचारों में क्रांतिकारी और क्रान्ति में सरल, सच्चे जिन भक्त और ओजस्वी उसके प्रचारक के रूप में पाया है।

अंचल

अमर रहेगा उनका नाम

आचार्य श्रीमद् लब्धिसूरीश्वर जी म० अपने उदात्त गुणों से युग- युग तक अमर रहेंगे और अमर रहेगी उनकी कृतियाँ भी। इतिहास में उनका गौरवपद तमाम लोगों को मुक्ति का मार्ग दिखा जाने वाला गुरु का पद है।

-नन्ददुलारे वाजपेयी

प्रेरक आचार्य भगवंत

धर्म, न्याय और आगम के सही और शुद्ध रूप को समाज के सामने रखने में पूज्य आचार्य गुरुदेव श्रीमद् लब्धिसूरि जी सदैव अग्रणी रहे हैं। अपनी साधना, त्याग और समर्पित निष्ठा से समाज को उज्ज्वल ज्ञान प्रदान करना आपका जीवन लक्ष्य रहा है। विद्वत्ता के साथ-साथ चारित्र्य गरिमा का दर्शन आपके जीवन का बेहतरीन उदाहरण है। कुशल वक्ता, न्यायशास्त्र के विशेषज्ञ एवम् दर्शन के यथार्थ अभिव्यंजक के रूप में आपश्री से सभी परिचित ही हैं।

-प्रो. हनुमन्त जाघव

हृदय गद्गद् हो गया : जैन धर्म में पंच-परमेष्ठी का बड़ा महत्व है। अरिहन्त और सिद्ध ये दो देव तत्व हैं और आचार्य, उपाध्याय एवं साधु गुरु तत्व हैं। सिद्ध तो समस्त कर्मों से मुक्त होकर मोक्ष में विराजमान हो जाते हैं, अतः उनसे तो हम प्रेरणा ही ले सकते हैं। सीधा सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकते क्योंकि देह और वाणी का उनमें सर्वथा अभाव है। अरिहन्त धर्म प्रवर्तक होते हैं पर वे सब समय विद्यमान नहीं रहते इसलिए अपने समय के लोगों को धर्मोपदेश दे सकते हैं। हाँ इनकी वाणी से अवश्य दीर्घकाल तक लाभ उठाया जा सकता है। पर उस वाणी को सुरक्षित रखने और प्रचारित करने का काम आचार्यों का है, इसलिए आचार्यों का उपकार बहुत ही महान् है। सारे संघ के वे नेता होते हैं अतः संघ की सार-सम्हाल उन्हीं के द्वारा होती है। उपाध्याय और साधु उन्हीं के शिष्य और आज्ञानुवर्ती होते हैं। समय-समय पर अनेक आचार्यों ने जैन धर्म और साहित्य की महान् सेवा की है और वर्तमान में भी बहुत कुछ शासन सेवा उन्हीं के द्वारा हो रही है। आचार्य विजय लब्धिसूरि इस

युग के ऐसे ही एक विशिष्ट आचार्य थे। आचार्यश्री से मेरा कई बार मिलना हुआ है और मैं उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ हूँ। बीकानेर में जब आपका चातुर्मास हुआ तो व्याख्यान आदि में बराबर मेरा जाना हुआ करता था। फिर पूना, मुम्बई में भी उनके दर्शन का सुअवसर मिला। वे बड़े सरल प्रकृति के और गुणानुरागी विद्वान् थे। उनके अनेक ग्रन्थ उनके विशिष्ट पांडित्य के परिचायक हैं। जैन दर्शन के साथ-साथ न्याय आदि अनेक विषयों के आप प्रखर विद्वान् थे। आपकी व्याख्यान शैली भी बड़ी आकर्षक थी। मेरे पर आपकी विशेष कृपा दृष्टि थी, परन्तु पूना और मुम्बई में मिलने पर आपने बहुत ही हर्षानुभव किया। इतने बड़े आचार्य का ऐसा धर्म स्नेह देखकर मेरा हृदय गद्‌गद् हो गया। वास्तव में वे एक विरल-विभूति थे।

आपका शिष्य समुदाय भी विशाल है और उनमें कई योग्य विद्वान् और सच्चरित्र पात्र आचार्य एवं मुनिगण हैं। उनके द्वारा भी यथेष्ट धर्म प्रचार और शासन प्रभावना हुई है और हो रही है इस दृष्टि से आचार्यश्री बड़े पुण्यवान थे कि जिन्हें इतने शिष्य-प्रशिष्यों का समुदाय मिला और उनकी सद्प्रवृत्तियों को चालू रखने और आगे बढ़ाने का सुयोग प्राप्त हो रहा है। आपके रचित ग्रन्थ कई भाषाओं और विषयों के हैं उसमें कई विद्वदभोग्य हैं तो कई जनसाधारण के लिये उपयोगी। आपकी काव्य प्रतिभा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नई राग-रागिनियों में आपने बहुत से स्तवन-भजन बनाये हैं और वे इतने लोकप्रिय हुए हैं कि हजारों स्त्रियाँ व बच्चे तक उन्हें मन्दिरों में गा कर आनंद विभोर होते हैं। वास्तव में उनकी कविता ने बहुत लोकप्रियता प्राप्त की। इस तरह हम देखते हैं कि उनकी प्रतिभा अनेक क्षेत्रों में असाधारण थी और उनकी शासन सेवाएँ भी अनेकविध हैं। ऐसे महान् आचार्य की पवित्र स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए लेखनी को विराम देता हूँ।

-अगरचंद नाहटा

ज्ञान व दया के धनी

पूज्य लब्धिसूरि जी ने अपनी किशोर अवस्था में पंजाब को आनन्दित किया। उनकी विद्वत्ता व गजब की वक्तृत्व कला से वे यहाँ छोटे आत्माराम जी कहलाते थे। आपश्री ज्ञान व दया के धनी थे। आपके पास नित्य नये ज्ञान पिपासु और अर्थ पिपासु आते, लाभान्वित होते और विचार चिन्तन का लाभ पाते। मैं उन दिनों स्नातकीय शिक्षण का छात्र था, प्राचीन भारत के इतिहास पर जो कुछ उनसे सीखा-समझा वह अमूल्य थाती है।

डॉ. मुख़्तयार सिंह, लुधियाना

गुणानुरागी

आचार्यश्री लब्धिसूरि जी दूसरों के कार्यों एवं गुणों का अनुमोदना करते नहीं थकते थे। वे विद्वानों का कद्र करना जानते थे।

-केशरीचंद जैन, फलौदी

कुशल उत्साहवर्द्धक

पूज्य आचार्यश्री लब्धिसूरि जी महाराज कार्यकर्ताओं में उत्साहवर्द्धन की अद्भुत क्षमता रखते थे। कार्यकर्ताओं के कार्य की सुन्दर समीक्षा और उनकी अनुमोदना आचार्यश्री की अपनी मौलिक विशिष्टता थी। जोधपुर और फलौदी के महोत्सवों में उन्हें निकट से देखने-समझने का अवसर मिला और उनका हो चला मैं जिन भक्ति में समर्पित होने।

-एस०आर० भंडारी

धरोहर आशीर्वाद

दिल्ली में मुनिश्री लब्धिविजय जी का प्रवचन सुन प्रभावित हुआ। वे आशु कवि थे जिसने मुझे उनके निकट लाया। एक दिन मैंने अपनी कृति "गुलदस्ता" खंड काव्य देकर भूमिका लिख देने का आग्रह किया। उन्हीं दिनों एक प्रवचन में मुनिश्री ने मेरे खंड काव्य की समीक्षा ही कर डाली, मैं गद्‌गद्‌ था। प्रवचन के बाद भूमिका लिखकर मेरी कृति लौटाते हुए पूज्यश्री ने मुझे सुन्दर रचना के लिए बधाई दी। भूमिका के साथ ही काव्य में कुछ संशोधन भी एक पृष्ठ पर लिखकर सुझाए जिसका परिणाम है कि उस कृति को ६ संस्थानों ने पुरस्कृत किया। आचार्यश्री के साथ मेरा यह चिर स्मरणीय प्रसंग ही मेरी श्रद्धांजलि है।

-डॉ० श्रीनिवास मिश्र

देश की खुशहाली का चिन्तन

जैनाचार्य श्री लब्धिसूरि जी से परिचय हुआ आचार्यश्री लक्ष्मण सूरि जी के माध्यम से। भारत की खुशहाली व समृद्धि का उनका अपना चिन्तन था। उनके इस विचार से मैं अधिक प्रभावित हुआ जब उन्होंने कहा "आर्यावर्तनी अेक चुटकी धूल मां जे सात्विक अणुरेणुओं विलसी रहया छे ते अन्य भूमि मां न थी ज"।

-देवीसिंह परमार, मुम्बई

अमूल्य थाती

आचार्य लब्धिसूरि जी सही अर्थों में गुरु थे। उनके सौम्य, सरल व्यक्तित्व से जो प्रोत्साहन मिला वह मेरी अमूल्य थाती है।

-रमणलाल पी० शाह० अधिवक्ता

विनम्र वंदना

आचार्य देवेश लब्धिसूरि जी संयम के साथ ज्ञान, ज्ञान के साथ साधना, विद्या के साथ विद्वत्ता एवं निस्पृहता के साथ निर्मल चरित्र का मणिकांचन योग रखने वाले वंदनीय महापुरुष थे।

-डॉ० पुष्पपाल अरुण

सत्यनिष्ठ आचार्य

सुप्रसिद्ध आचार्यश्री लब्धिसूरि जी महाराज महान् गुरु, आत्मबली, स्वानुशासित एवं सत्यनिष्ठ श्रद्धापुंज थे।

-डॉ० श्री व्यास, जोधपुर

सम्यक्-प्रणाम

श्रीमद्

लब्धि सूरिदेव

महामनीषी थे। महामति थे।

सरस्वती उन पर मुग्ध थी

और उसने अनन्य शरण होकर

उनका आश्रय लिया था।

जिनकी अमृत वर्षिणी

उपदेश धारा से हजारों हृदयों में

त्याग, वैराग्य की भावना भरी थी।

जिनकी मधुर काव्य रचना से

विशाल मानव मन भक्ति से

सराबोर है।

ऐसे महान् गुरुदेव

भगवंत के श्री चरणों में

सम्यक् प्रणाम समर्पित..........

-पंन्यास श्रीमद् वारिषेणविजय

महात्मा लब्धिसूरिदेव

० सुरेश सरल

पूर्ण करते प्यास धर्म की, श्रावक गद्‌गद्‌ होते हैं,
ज्योति ज्ञान की जला "लब्धिमय", पापों का तम नशते हैं।
यश जो सदा चरण छूता था, कभी न उनको चाह रही है,
रही अपरिमित तुष्टि हृदय में, निधियों की न चाह रही है।।

०००

नन्हें से तन की गागर में, सागर सभी समाने थे,
जिसका परिचय हुआ, उसी ने सर्व पदारथ जाने थे,
जीवन उनका बीत रहा था, जिनवाणी को सुना सुना,
चिरकाली चिरव्यापी जिनवर, जिनने मन में सदा गुना।।

०००

गुरुवर मन में रहें सदा, शुभ मार्ग हमें दिखाते थे,
जीवन के हर कठिन मार्ग के, प्रश्न तुरन्त सुलझाते थे।
जो हित-मित-प्रिय सत्‌वादी थे, शत-शत नमन हमारा है,
उस पथ के हम हों अनुयायी , जो पथ उनने धारा है।।

पूज्यश्री के प्रवचन

-मूलचंद बोथरा, कोविद

पूज्यपाद श्रीमद विजयलब्धि सूरीश्वर जी म. ने पूज्य गुरुदेव की निश्रा में प्राप्त ज्ञानानुभूति को जन सामान्य में प्रवाहित किया। पूज्यश्री सहजता व सरलता के साथ विषय का प्रतिपादन किया करते थे। एक शब्द, एक वाक्य, एक श्लोक, एक प्रसंग से प्रवचन की शुरुआत करते थे। विश्व शांति, धार्मिकता, अहिंसा, शिक्षा, मानव धर्म, मानवता, सेवा, प्राणी मात्र के प्रति प्रेम आदि विषयों पर धीर-वीर-गंभीर प्रवचनों के शृंखलाबद्ध प्रसंग जुड़े हैं। "लुधियाना" नामक व्याख्यान पुस्तिका पूज्य श्री के प्रवचनों का दस्तावेजी संग्रह है। महातमेकरूपता, सा विद्या या विमुक्तये, ही और भी, कंठे सुधा वसति वै भगवज्जनानां, भक्तिः तीर्थकृतां नतिः प्रशमिनां, चत्तारि परमंगाणि आदि सैकड़ों प्रवचनों के क्रम ने लाखों लोगों को प्रभावित किया था। मूर्तिमंडन, देवद्रव्यसिद्धि, अविद्याधंकार आदि अनेक प्रवचन चिरस्मरणीय हैं और भविष्य के मार्गदर्शक हैं। पू. आचार्यश्री अपने प्रत्येक प्रवचन में नए श्लोकों, काव्यों की यथा प्रसंग तत्काल रचना कर अपनी असाधारण कवित्व शक्ति का परिचय देते थे। दिल्ली में राजर्षि टंडन से मुलाकात में तत्काल रचित ११ श्लोकों का पुष्प भेंट किया। टंडन जी ने गद्‌गद् होकर आशुकवि की विलक्षण प्रतिभा को सहर्ष प्रणाम किया था। द्वादशारनयचक्र के विमोचन समारोह में वयोवृद्ध आचार्य भगवंत ने संस्कृत में धारा-प्रवाह प्रवचन देकर हजारों लोगों के साथ लब्धप्रतिष्ठ दार्शनिक, तत्वचिन्तक उपराष्ट्रपति डा०राधाकृष्णन् को मंत्रमुग्ध कर दिया था। पूज्य प्रवर के प्रवचन आज भी प्रेरक हैं, मार्गदर्शक हैं जिसके कुछ संग्रहीत अंश यहाँ प्रस्तुत हैं:

शाश्वत सुख : हे युवकों, सांसारिक कल्पनाजन्य सुखों का परिणाम घोर दुःख का कारण बनता है। आज जो पदार्थ प्रियकर लगता है जिसे इष्ट मानते हैं वही पदार्थ परिणामांतर अनिष्टकारी हो जाता है। क्षणिक सुख के लिए जीवन से कर्तव्यविमुख होना यह सज्जन का कार्य नहीं है। तुच्छ सुखों से कभी तृप्ति नहीं होती और अभिलाषा बढ़ती ही जाती है।

कहा है कि-

धनेषु जीवितव्येषु चाहारकर्मसु।
अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे, याता यास्यन्ति यान्तिच।।

अर्थात् धन, जीवन, स्त्री, आहार कर्म में प्राणी अतृप्त हो जाता है, हो

गया है और हो जाएंगे। त्याग सिवाय वास्तविक तृप्ति होनी नहीं है इसलिए तुच्छ भोग विलास में न डूबिए बल्कि शाश्वत सुख को देने वाले चरित्र में स्थिर रहने का प्रयत्न कीजिए।

धर्म का मूल दया : दया ही धर्म का सही रहस्य है। सभी धर्मों की ओजस्विता दया में ओत-प्रोत है। जहाँ दया है, प्राणियों के रक्षण की सद्भावना है, वहाँ संपत्ति सुख और आरोग्य सुख परस्पर सहेली बनकर दयावंत की सेविका बनी रहती है। जिन मानवों के रक्त कण में प्राणी मात्र के प्रति दया बहती रहती है वही सच्चा मनुष्य है। वही प्राणियों के प्राणों को स्वयं के पापी पेट और जीह्वा के तुच्छ स्वाद के लिए छीनने वाला हिंसक मानव नहीं हो सकता। मूक पशु या अन्य असहाय प्राणी किस न्यायाधीश के सामने पुकार करें।

ददाति दुखं योऽन्यस्य ध्रुवं दुःखं स विदन्ते।
तस्मान्न कस्यचिद् दुखं, दातव्यं दुःख भीरुणा।।

जो मनुष्य दूसरों को दुःख देता है वह स्वयं दुःख को अपने लिए बुलाता है इसलिये दुःख से बचने के लिए दूसरों को कदापि दुःख नहीं देना चाहिए। स्कन्दादि पुराणों में भी जीव दया की पुष्टि की है।

धर्मो जीवदया तुल्या, न क्वचापि जगति तले।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन, कार्या जीवदया नृभिः।।

जीवदया तुल्य दूसरा कोई भी जगत् में धर्म नहीं है अतः सर्व प्रयत्नों से जीवदया करनी चाहिए।

यो दद्यात काचनं मेरूं, कृत्स्नां चैव वसुंधरां।
एकस्य जीवितं दद्यात, न तत तुल्यं युधिष्ठिर।।

हे युधिष्ठिर, जो कोई मनुष्य सोने का मेरु पर्वत और सम्पूर्ण पृथ्वी का दान करता हो और एक व्यक्ति एक प्राणी को जीवनदान करता है तो दोनों बराबर नहीं होते, जीव दया का दान करने वाला ऊँचा और श्रेष्ठ होता है।

हेमधेनुधरादीनां दातारः सुलभा भवि।
दुर्लभः पुरुषो लोके, यः प्राणिएव भयप्रदः।।

सोना, गाय और पृथ्वी का दान करने वाले मनुष्य सरलता से मिल जाते हैं किन्तु प्राणियों को अभयदान देने वाले पुरुष जगत् में कठिनता से मिलते हैं।

यावंति पशुरोमणि, पशु गात्रेषु भारत?
तावद्धर्ष सहस्राणि पच्यन्ते पशुघातकाः।।

पशु के शरीर में जितने बाल होते हैं उतने हजारों वर्ष तक़ पशुवध करने वाले को नरक का दु:ख उठाना पड़ता है।

इन श्लोकों से पता चलता है कि जैन धर्म में तो छोटे से छोटे जीवों का स्वरूप वीतराग परमात्मा ने बहुत सहज ही बताया है, पर दूसरे धर्मों में भी दया धर्म के पालन के लिए कहा गया है। कोई भी धर्म दया का विरोधी नहीं है। जिस शास्त्र में दया का विधान नहीं वह शास्त्र नहीं अपितु भव यात्रा को बढ़ाने वाला भवशास्त्र है।

कोई भी जीव मरना नहीं चाहता भले ही वह किसी भी योनि में क्यों न उत्पन्न हुआ हो।

मृत्यु का भय तथा जीने की आकांक्षा स्वर्ग में रहने वाले इन्द्र को तथा विष्टा में रहने वाले कीड़े को एक समान ही होता है। प्रत्येक धर्मशास्त्रों में कहे हुए श्लोकों पर क्षण भर भी विचार किया जाय तो अनायास ही हजारों जीवों को अभयदान मिल सकता है।

क्षणिक आमोद-प्रमोद के लिए जो निरपराधी जीव-जंतुओं की हिंसा करता है वह शारीरिक भयंकर दर्दों से पीड़ित होता है और घोर पापी बनकर रौरव नरकादि असह्य पीड़ाओं को भोगने की तैयारी करता है। जीवों के प्राण लेने वाला, प्राण लिवाने वाला, खाने वाला, पकाने वाला, बेचने वाला और लाने वाला ये सभी समान पाप के भागीदारी होते हैं।

सुख पुण्य वृक्ष के मनोहर पुष्प से निकला फल है और दु:ख पाप वृक्ष के दुर्गंधमय पुष्पों से निकला कटुक फल। दीर्घ दृष्टि से विचार किया जाय तो सहज ही जाना जा सकेगा कि सुखी होने के लिए पुण्य का ही उपार्जन करना चाहिए। आत्मा की सच्ची पहचान होने के बाद उसका क्रमिक विकास और उसमें रही ज्योति की प्राप्ति के लिए सहज प्रयास किया जाना चाहिए। प्रत्येक प्राणी सुख की चाहना करता है, पापाचरण में लिप्त भी स्वर्ग की सुखद् शैय्या की इच्छा रखता है किन्तु भावना मात्र से सुख नहीं मिल सकता। वास्तविक सुख सही साधन के बिना कदापि संभव नहीं। सच्चा सुख तो वही है न जो मिलने के बाद वापस न जाय? सुख में दु:ख का लेशमात्र अंश न हो? सुख के बाद दु:ख न आए, ऐसे सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए हे चेतन, तू विचार कर।

ईर्ष्या व द्वेष शत्रु : द्वेष और ईर्ष्या अत्यंत कट्टर शत्रु हैं। अज्ञानियों को इन शत्रुओं की दोस्ती अच्छी लगती है, प्रिय लगती है परन्तु इन दुष्ट शत्रुओं का आक्रमण कब होगा इसका उन्हें भान भी नहीं हो पाता और कितना अध:पतन कर जाता है कि सब कुछ गंवाने के बाद वे आभास मात्र कर पाते हैं।

लब्धि-वाणी

-चेनराज लूनिया

- धूप सेंकने, कपड़ा सुखाने से लेकर सूर्य शक्ति की प्रचंड ऊर्जा उपलब्ध करने वाले यंत्रों का प्रयोग करने तक की अनेक विधि व्यवस्थाएँ मनुष्य स्वयं बनाता है। सूर्य को इससे न तो प्रसन्नता है और न अप्रसन्नता। वह इन प्रयोक्ताओं पर प्रसन्न होता हो या महल- कन्दराओं में रहकर धूप से बचे रहने वालों पर अप्रसन्न होता हो, ऐसी कोई बात नहीं है।
- यदि तथ्य सशक्त हो और संकल्प में सच्चाई हो तो छोटा शुभारम्भ भी क्रमशः बढ़ सकता है और समयानुसार पूर्णता तक पहुँच सकता है।
- शिक्षा का संवर्द्धन और चिन्तन व चरित्र में उत्कृष्टता का समावेश करने वाली विद्या का पुनरुत्थान जरूरी है।
- आत्मिक प्रगति के चार सूत्र हैं साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा।
- जब भी शारीरिक शिथिलता महसूस हो, प्रमाद बढ़े, आयम्बिल की तपस्या कीजिए। एक आयम्बिल में असाधारण शक्ति है।
- जीव आप ही कर्म करता है आप ही फल भोगता है। अच्छे कर्मों का अच्छा फल निर्विवाद सत्य है।
- कौन कितना सौभाग्यशाली है इसके उत्तर में उसके पद-वैभव- प्रभाव आदि की नाप-तौल की जाती है। सुविधा साधनों के सहारे इस प्रकार का मूल्यांकन किया जाता है जबकि देखा यह जाना चाहिए कि गुण, कर्म, स्वभाव, चरित्र की दृष्टि से कौन किस स्तर पर रह रहा है। वास्तविक उपार्जन एक ही है- परिस्कृत व्यक्तित्व। इसके सम्पादित करने में जो जितना सफल रहा है समझना चाहिए कि उसने मनुष्य जन्म के सौभाग्य का लाभ उसी अनुपात में उठा लिया।
- यह तो बिडम्बना ही है कि मनुष्य बाह्य संसार एवं सम्बन्धित वस्तुओं के विषय में अधिकाधिक जानकारियाँ एकत्रित तो करता है, पर स्वयं अपने विषय में अपरिचित बना रहता है। अपने स्वरूप का बोध न होने तथा सांसारिक आकर्षणों में भटकते रहने से अंततः भटकाव ही हाथ लगता है। मनुष्य क्या है? जीवन का स्वरूप एवं लक्ष्य क्या है? जीवन के साथ जुड़े संसार एवं विभूतियों का सही उपयोग क्या है? इन प्रश्नों की उपेक्षा

से आत्म विस्मृति छाई रहती है। भौतिक सुखाकांक्षा में भटकती जीवात्मा अशांति और असंतोष के आग में जलती रहती है। रोने-कलपने में हारी थकी जिंदगी कट जाती है। ऐसा इसलिए होता है मनुष्य को अपनी सत्ता का बोध नहीं हो पाता, न ही कोशिश होती है और जीवन लक्ष्य का निर्धारण भी नहीं हो पाता है।

- आत्म ज्ञान की चरम उपलब्धि के लिए तत्वदर्शन को समझना जितना आवश्यक है उतना ही संयम साधना का मार्गावलम्बन भी अनिवार्य है।
- चित्त (मन) के उदय और अस्त से संसार का उदय और अस्त होता है। अतः वासनादिक मनोविकारों के निरोध से मन का निरोध जरूरी है।
- मन को वश में करने के लिए ज्ञान मार्ग का अवलम्बन लेना चाहिए।
- क्रोध को जीतने का प्रयास श्रेष्ठतम प्रयास है।
- श्री जिनधर्म का मर्म समझते कर्म हलका होता है, दुनियादी भ्रम टल जाता है और इससे शिवशर्म सहज व सत्वर प्राप्त होता है यह स्वाभाविक है।
- जहाँ त्याग है वहाँ है शिवसुंदरी का वास है। जहाँ है कर्म और मोह की आग वहाँ है भागमभाग। हे मानव! कुंभकर्ण की निद्रा से जाग।
- अनगारी बनने से विकार हटेगा और जिनधर्म स्वीकारने से श्री जिन निर्दिष्टत आचरण से दुःख मिटेगा।
- जिन ध्यान में लीन बनो, जिससे आत्म बल बढ़ेगा।
- धर्म का पोषण और कर्म का शोषण करो।
- यदि त्याग से भागे तो समझो कि नहीं जागे। त्याग धर्म में लगे तो यश का डंका बजेगा।
- वैराग्य भाव हृदय में बसाओ और सूक्ष्ममति से जिन तत्वों को बसाओ।
- आपकी आकृति तो मानव की है किन्तु आसुरी प्रवृत्तियों से दानव मत बनो।
- त्याग के लिए तो राग है पर राग का त्याग कब करेंगे?
- जिनधर्म की दीक्षा सच्ची शिक्षा है और आत्मा की परीक्षा है।
- आत्मा की क्षुधा पिपासा आंतरिक उत्कृष्टता एवं उदार सेवा साधना से ही तृप्त होती है।

◆ भावों के प्रवेश पर विवेक का अंकुश न हो तो वह कितनी ही प्रकार की समस्याओं को जन्म दे सकता है।

◆ गृहस्थ बनने के लिए श्रावक बनना चाहिए और परस्पर विश्वासी बनना कि दूसरों की इच्छा ही अपनी इच्छा बने। संत बनना हो तो ऐसा बनना जिसे क्रोध ही न आये।

◆ श्रम की प्रतिष्ठापना तथा आराधना जहाँ भी होगी वहाँ किसी प्रकार की कमी कभी नहीं हो सकती।

◆ प्रार्थना, स्तुति, स्तवन आदि माध्यमों से व्यक्ति अपनी श्रद्धा को परिपुष्ट कर सकता है। प्रार्थना सम्यक् रूप से हो क्योंकि प्रार्थना अपने सबसे विश्वस्त, सर्वसमर्थ तथा सबसे आत्मीय सत्ता से जुड़ने की एक सरल किन्तु अत्यंत प्रभावशाली, आध्यात्मिक प्रक्रिया है जो क्रिया से सामान्य होते हुए भी प्रतिक्रिया की दृष्टि से असामान्य है।

◆ मनुष्य जीवन चंदन काष्ठ की तरह बहुत मूल्यवान है उसे कोयले की तरह कौड़ी के मोल न गंवाओ। जीवन का एक-एक क्षण बहुमूल्य है उसे वासना और तृष्णाओं के बदले क्षणिक सुख की प्राप्ति से मत गंवाओ। अब जितना भी समय बचा है उसका सदुपयोग कर लो। बहुत गंवाकर भी कोई मनुष्य अंत में भी संभल जाता है तो वह बुद्धिमान ही माना जाता है।

◆ आत्मबल और आत्मज्ञान निर्बलता से नहीं प्राप्त किया जा सकता है और न प्रमाद या निरुद्देश्य प्रयासों से ही प्राप्त किया जा सकता है। वहीं ज्ञानी साधक इसके विपरीत बल, अप्रमाद एवं सोद्देश्य यत्नों द्वारा आत्म कल्याण कर सकता है।

◆ समय को बर्बाद मत करो। हर क्षण शुभ है अतः अवसर की प्रतीक्षा में मत रहो। अवसर हमेशा हर दिन हर क्षण होता है। बुद्धिमानी इसी में है कि अवसर का अधिकाधिक उपयोग किया जाय। अवसर की तलाश में अवसर ही चला जाता है।

◆ भूतकाल की चर्चा न करें जो गया वह लौटने वाला नहीं।

◆ काम चाहे छोटा ही क्यों न हो, यदि सही तरीके से कर दिखाया जाय तो उससे अच्छा परिणाम निकल आता है। यही उन्नति की सीढ़ी है।

◆ यज्ञ का अर्थ जीवों की हिंसा नहीं है। वास्तव में यज्ञ का अर्थ है उदारशील-दानवृत्ति, सत्प्रवृत्तियों का अभिनन्दन एवं सामुहिकता को समर्थन।

- नियति में पक्षपात नहीं, परिवर्तन का क्रम है। उसे ही स्वीकार करें, विवाद में न उलझें।
- जिंदगी की सफलता वैभव, सम्मान व विलास से मत आंको बल्कि अपना भविष्य कितना संवारा जा सका और दूसरों का कितना उत्कर्ष बन पड़ा, से आंका जा सकता है।
- सच्ची मैत्री, भावना, स्नेह, सद्भाव एवं सुन्दर अनुभव से ही व्यक्ति आदर्श होता है और श्रेष्ठतम आदर्शों के अनुकूल आचरण ही प्रेरक होता है। श्रेष्ठ व्यक्तित्व का आवश्यक तत्व है सज्जनता, विनयशीलता, शिष्टता, उदारता, सरलता और दृढ़ आत्मविश्वास।
- यह मेरा और यह तेरा ऐसी भावना जब तक नहीं मिटती तब तक मोक्ष की प्राप्ति मुश्किल है।
- देव-गुरु-धर्म का गुलाम बनकर रहने वाला जगत् का गुलाम कभी नहीं बनता।
- सरकार का वारंट किसी बहाने वापस किया जा सकता है किन्तु मृत्यु का वारंट वापस नहीं किया जा सकता।
- दुःख मनुष्य को निराश बनाने के लिए नहीं, उसे सावधान करने आते हैं।
- जीवन के प्रत्येक आचरण में निर्मलता जरूरी है।
- स्वार्थ हमेशा चिंताग्रस्त करता है।
- श्रद्धा अखंड बत्ती जैसी चाहिए। वह हमें ही नहीं आसपास भी प्रकाश देती है।
- सत्याग्रही में सत्य का आग्रह - सत्य का बल होना चाहिए।
- शृंगार ही अहंकार है, विषय सुख ही सजा है, इसके स्नेहियों की आत्मा का बुरा हाल है और यही भयंकर काल है।

लब्धि गुरु कृपा प्रसादी
चौबीस तीर्थंकर भगवान् के चौबीस स्तवन

(१)

श्री आदि जिन स्तवन

ऋषभ जिन ! सुन लियो भगवान, अरज तुमसे गुजारुं हूं .
लगाकर कर्म ने घेरा, योनि लख वेद वसु फेरा ;
जन्म मरणों की धारा में, हा हा ! क्या कष्ट धारुं हूं ॥१॥
श्वासोश्वास एक में जिनजी, सत्तर मरणों जनम लिया ;
गति निगोद विकारों में, अनन्ता काल हारुं हूं ॥२॥
नरक दुःख वेदना भारी, निकलने की नहीं बारी ;
शरण वहां है नहीं किसी की, प्रभु ये सच पुकार हूं ॥३॥
गति तिर्यंच की पामी, जहां नहीं दुःख की खामी ;
जबी दुःख से चक्कर आवे, नहीं आंखों से भालुं हूं ॥४॥
मुझे ऐसा करो उपकृत, होउं मैं जिससे निर्मल ह्रन् ;
अट्ठावीस लब्धि को पाइ, मोक्षलक्ष्मी निहालुं हूं ॥५॥

(२)

इन्दौर मंडन श्री अजितनाथ जिन स्तवन

अजित जिणंद सुखधाम, जपी ले सुखकारियां, जपी ले सुखकारियां.
मालवदेशे दीपे मनोहर, दीपे मनोहर
इन्दोर मन्दिर सार ... जपी ले ॥१॥
नगरी अयोध्या में प्रभु जन्मे, में प्रभु जन्में ;
त्याग दिया संसार ...जपी ले ॥२॥
संजम धर प्रभु केवल पाया, केवल पाया ;
उपदेश दिया मनोहर - जपी ले ॥३॥

क्षणभंगुर ये मानवदेह से, मानव देह से,
करी लो धर्म सुखकार ... जपी ले ॥४॥
संयम पाकर मुक्ति मिलावो, मुक्ति मिलावो ;
दहकर करम कुहार ... जपी ले ॥५॥
प्रभु वचनों को सुनकर संयमी, सुनकर संयमी ;
बहुत हुए नरनार ... जपी ले ॥६॥
अति उपकारी जिनवर ऐसो, जिनवर ऐसो ;
और नहीं अवतार ... जपी ले ॥७॥
आतम कमल में धर शैलेशी, धर शैलेशी ;
लब्धिसूरि हुए पार ... जपी ले ॥८॥

(३)

फलौधी (पोकरण) मंडन श्री संभवनाथ जिन स्तवन

तेरे पूजन को गुणवान, मिला है संभवजिन भगवान
तुं है राजा तुं शिरताजा, तुं मेरा है महाराजा ;
प्रभु का ज्ञान अपरंपार, मिला है संभव जिन भगवान. तेरे ॥१॥
कूड़े विषयों कुडी काया, भवजल में है क्यों फंसाया ;
तुं धर ले प्रभु का ध्यान, मिला है संभव जिन भगवान. तेरे ॥२॥
मैंने पाइ तोरी छाया, तब अनुपम सुख है पाया ;
गावे गुणीजन तोरा गान, मिला है संभवजिन भगवान .. तेरे ॥३॥
मैं हूं रागी तूं वीतरागी, मोरी शूरता तुमसे लागी ;
हमारा जल्दी करो मिलान, मिला है संभवजिन भगवान... तेरे ॥४॥
मेरा आत्म-कमल विकसाया, मैं नगर फलौधी में पाया ;
देना लब्धिसूरि शिवदान, मिला है संभवजिन भगवान... तेरे ॥५॥

(४)

नाडोल मंडन श्री पद्मप्रभ जिन स्तवन

पद्मप्रभ प्यारा, जीवन का है आधार .
सम्यक्त्वदायी ज्ञानसुहायी, चारित्र का भी दातार ... पद्मप्रभ ॥१॥
धर भूपति का कुल सुहाया, माता सुसीमा मल्हार. पद्मप्रभ ॥२॥
अडग चारित्र प्रभुजी पाली, पाये केवल उदार. पद्मप्रभ ॥३॥

देव असुर प्रभु तिर्यंच तारे, तारे है नर और नार .. पद्मप्रभ ॥४॥
जड़ को दुःख की जड़ बताइ, चेतन बताया श्रीकार .. पद्मप्रभ ॥५॥
नाडोल मंडन पद्म नेमीश्वर, आदि जिणंद जयकार .. पद्मप्रभ ॥६॥
आत्म कमल में ध्यान तुम्हारा, लब्धिसूरि सुखकार .. पद्मप्रभ ॥७॥

(५)

श्री चंद्रप्रभुजिन स्तवन

चंदाप्रभुजी प्यारा मुझको दिया सहारा
तुमे कर्म कष्ट वारा, उसने हमें है मारा, ..चंदा ॥१॥
मैं त्राहि त्राहि करता, चरणों में तेरे पड़ता,
क्यों नहि दुःखों को हरता, महामोह से हुं मरता ..चंदा ॥२॥
करुणा समुद्र तुं है, नहीं तुझ से कोई आला
मुझ मन बना है पक्षी, तुम गणो है माला ..चंदा ॥३॥
नरकादिको में कला, तुम नाम को जो भूला.
उसके बिना सहारे, पाया है दुःख अमूला ..चंदा ॥४॥
अब पुण्य वायु वाया, करमे विवर दिखाया.
सम्यक्त्व चित्त धारा, तब पाया तुम देदारा ..चंदा ॥५॥
आत्म-कमल दिनेश्वर, दुर्लभ प्रभु जिनेश्वर ;
निज शक्ति संपदा दो, शिशु लब्धि को बचालो ..चंदा ॥६॥

(६)

मरुदेवी मात जात ! करो पार नैया मोरी
रह्यो भव समुद्रे भटकी, विकट गिरि में अटकी ;
कर्मो रहे हैं पटकी, आशा जीवन की थोरी .. मरुदेवी ॥१॥
प्रथम जिणंद राया, भिक्षुक प्रथम कहाया :
भये प्रथम मुनीश्वर, हुए धर्म युग धोरी .. मरुदेवी ॥२॥
प्रभु सिद्धगिरि राजे, अद्‌भुत बिबं छाजे ;
शिव दान को बिराजे, कर्मों की बेडी तोरी .. मरुदेवी ॥३॥
दो कोटि सिद्धि पाया, नमि विनमि राया,

द्राविड वारिखिल्ला, दश कोडी कर्म छोरी .. मरुदेवी ॥४॥
कोडि पंच सिद्धये पांडव, तोड़ी कर्म का तांडव ;
प्रद्युत्न शाम्ब सिद्धये, साड़े आठ साथ कोडी .. मरुदेवी ॥५॥
पांच कोडि मुनि साथ, वरे पुंडरीक नाथ ;
सिद्धि वधू रुपाली, पुंडरीक नामकारी .. मरुदेवी ॥६॥
अनंत सिद्धि पाये, जो इण गिरि पे आये ;
महिमा अजब भारी, शरणा लिया में धारी .. मरुदेवी ॥७॥
आत्म-कमल विकासों, घट लब्धि को प्रकाशो ;
होय शिवपुर वासो, विनित है यह हमारी .. मरुदेवी ॥८॥

(७)

सिद्धगिरि पर आदिप्रभु को प्रातः प्रणाम .. प्रभु
तुं स्वामी में दीन हूं प्यारा,
तेरे बिन मुझ नहि निस्तारा ;
आया तुम दरबार, प्रभु को प्रातः प्रणाम .. सिद्धगिरि ॥१॥
जहान भर में तीरथ उदारा,
भव्य हृदय का यही सतारा,
तीरथ तारणहार, प्रभु को प्रातः प्रणाम .. सिद्धगिरि ॥२॥
दिलचस्प दिलवर दिलधारा,
तब से दिल का हुआ सुधारा :
बंदगी वारं वार, प्रभु को प्रातः प्रणाम .. सिद्धगिरि ॥३॥
ये गिरि मेरे नैन का तारा
गुण मोतनका ये है हारा ;
केवल कमलाकार, प्रभु को प्रातः प्रणाम .. सिद्धगिरि ॥४॥
लाख चोरासी योनि वारे,
कर्म सकल को ये गिरि जारे,
ये गिरि मुज दिलदार, प्रभु को प्रातः प्रणाम .. सिद्धगिरि ॥५॥
आत्म-कमल में गिरिगुण गाना,

लब्धिसूरि यात्रा फल पाना,
सर्व तीर्थ सिरदार, प्रभु को प्रात: प्रणाम .. सिद्धगिरि ॥६॥

(८)

बीकानेर मंडन श्री आदिजिन स्तवन

बंदे आदि प्रभु गुण गाना,
कैसी मूरत अजब सूरत,
प्रभु नैनों से नैन मिलाना . बंदे ॥१॥
दर्शन प्रभु का है पुण्य में पाया,
दिल को लगा ज्योति जगा ;
बुरे कर्मों कों जीया भगाना . बंदे ॥२॥
तत्त्व प्रभु का है ज्ञान खजाना,
चित्ते धरी दु:खो हरी ;
नर जन्म को सफल बनान . बंदे ॥३॥
शासन प्रभु का भाग्ये मिला है,
मोह मिटे कर्मों करे,
फिर ज्योति से ज्योति मिलाना . बंदे ॥४॥
सिद्धगिरि ज्युं आप बिराजो,
दर्शन करी मुक्ति वरी,
आत्म कमलमें लब्धि मिलाना . बंदे ॥५॥

(९)

इंदौर मंडन श्री आदिजिन स्तवन

इंदौर में बिराजे, आदि जिणंद राया :
दर्शन जिणंद करके, हर्षे हृदय भराया . इंदौर ॥१॥
बलिहारी जिन जी तोरी, बिन हार में निभाया ;
एक वर्ष तक विरागी, तपसे तपाइ काया . इंदौर ॥२॥
एक लाख पूर्व वर्षों, लगी लगन लगाया ;
संजम में पूर्ण भावे, घाति कर्म भगाया . इंदौर ॥३॥

आतम में ज्योति प्रगटी, जिनकी सकल स्वरूपी ;
रूपी भाव जग के जाने, जाने सभी अरूपी . इंदौर ॥४॥
मालवभूमि मनोहर, इंदौर शहेर शोभे ;
आदि जिणंद मंदिर, भविजनके मनको लोभे . इंदौर ॥५॥
आतम कमल में जिनजी, हारहजुर हमारे ;
शिव लब्धि नहि है दूरे, चरणे वसे तुम्हारे . इंदौर ॥६॥

(१०)

केशरियानाथ स्तवन

मूरति है अलबेली दादा, मूरति है अलबेलि,
सुंदर सूरत मोहे मनको, तीन लोक को प्यारी है,
हर आलम पर जादू डारा, सेवे आलम सारी है;
तेरा गुणवन नंदन सोहे, बुलबुल मस्ती रंगीली ...दादा ॥१॥
दिवस रात है ध्यान तुम्हारा, वो ही पार करती है,
दर्शन है प्रभु तारणहारा, उसकी धून निराली ...दादा ॥२॥
दुःख का सागर नाथ सुखा दो, शिवसुख की तो केलि है,
देश मेवाड़े आप बिराजो, सुरत छेलछबीली है,
श्री आदीश्वर, श्री केसरिया, लब्धिसूरि का बेली ...दादा ॥३॥

(११)

शिरोही मंडन - श्री आदिनाथ स्तवन

सेवा करो श्री आदिप्रभुकी, सेवा करो प्रभु की,
युगला धर्म थे प्रभु वारा, तुं प्रभु आदि सितारा,
तुं मेरा स्वामी में तेरा चेरा, पार करो बेड़ा मेरा;
शिवपुर का प्रभु द्वार दिखा दो, लब्धि तुं देगा, सिद्धि तुं देगा ..सेवा ॥१॥
सिरोही शहेर में चौमुखजी प्यारा, तुं ही अनेक आधारा;
शिवरमणीका तूं दातारा, जपुं तूं ही तूं ही प्यारा ;
दुर्गति का प्रभु द्वारा हटा दे, बुद्धि तूं देगा, ऋद्धि तूं देगा ..सेवा ॥२॥
आत्म-कमल में तुम को धारा, तूं मेरा दिलहारा,

लब्धिसूरि को अति सुखकारा, करा दो भवोदधि पारा;

हमरे सब प्रभु कर्म हटा दे, शक्ति तूं देगा, मुक्ति तूं देगा ..सेवा ॥३॥

(१२)

शिवगंज मंडन श्री आदिनाथ जिन स्तवन

आदि जिणंद भजके, करम जड़ जाइना

छोड़ माया प्रभु संयम पाया, सहस वरस इसमें दिल डाया;

यथाख्यात चारित्र सुहायां, ज्ञान दशा सजके, करम जड़ जारना ..आदि ॥१॥

केवलज्ञानको जिनजी पाया, एक समयमें सब ही दिखाया ;

नर सुरासुरपति गुण गाया, समसरण रचके, करम जड़ जारना ..आदि ॥२॥

देवाधिदेव मेरे नाथ सोहंदा, हरे भविकजन करमका फंदा ;

आपे जन को अंमद आनंदा, पार होना नम के, करम जड़ जारना..आदि ॥३॥

माता मरुदेवा दर्श को आये, दर्शन से शिवपदवी पाये,

सादि अनंती स्थिति हाये, श्री जिनगुण ग्रहके, करम जड़ जारना ..आदि ॥४॥

आत्म कमल में जो जिन ध्यावे, लब्धिसूरि निज कर्म खपावे;

लाख चोरासी फेरा मिटावे, गुणी के गुण रटके, करम जड़ जारना..आदि ॥५॥

(१३)

पोकरण (फलौधी) श्री आदिनाथ जिन स्तवन

आदिनाथ भगवान तोरी सेवा में लागुं .

नाभिकुल नभ चन्द्रमा सोहे,

भ्रमण मिटाय, तोरी सेवा में लागुं ॥१॥

सहस्त्र वर्ष प्रभु तप अति तपीया,

केवल जगाय, तोरी सेवा में लागुं ॥२॥

भविजन का सब पाप निवारा ;

देशना सुनाय, तोरी सेवा में लागुं ॥३॥

तीरथ स्थापी समकित आपी ;

सुगति मुगति मिलाय, तोरी सेवा में लागुं ॥४॥

आत्म-कमलमें लब्धि लहेरो ;

पूजन से लहेराय, तोरी सेवा में लागुं ..५

(१४)

श्री आदि जिन स्तवन

अेक भक्ति बसाले मेरे मन भक्ति बसा ले,
चूर करी कर्म सारे जा न सके हां ;
चार बड़े सुख कोइ ना न सके हां,
मुक्ति को आंगण में तूं ही बुला ले ... मेरे मन ॥१॥
आदि प्रभु गुण तेरे दिल में बसा हां,
तीर्थपति प्यार तेरे दिल में हसा हां ;
कर्मों को भक्ति से तूं ही भगा ले ... मेरे मन ॥२॥
ज्ञान बिना कोइ इसे ध्यान शके हां,
ध्यान बिना आत्मज्योति ना न शके हां ;
आत्माकी ज्योति को तुं ही बसा ले ... मेरे मन ॥३॥
दुःखी है दुनिया की दर्द भरी बातें,
बड़े-बड़े धाती करे आतम की धातें ;
ध्यान धरी जिनवरका दूर हटा ले ... मेरे मन ॥४॥
माया के मीठे-मीठे खेल निराले,
चेतन की माया से उनको उड़ा ले ;
आत्म कमल लब्धि तुं दिलमें मिला ले ... मेरे मन ॥५॥

(१५)

पोकरण फलौधी मंडन शीतलनाथ जिन स्तवन

शीतलप्रभु की मूर्ति, दिलको लुभा रही है,
घट में सदा ही मेरे, ज्योति जगा रही है ॥१॥
नहीं कोइ दिल सुहावे, जिनराज याद आवे,
पलपल धड़ी-धड़ी में, उनका ही जाप भावे ॥२॥
तूं राज सता ऊंचे, मैं राज सात नीचे ,
भक्ति प्रभु तुम्हारी, चुंबक तरे ही खींचे ॥३॥

धन्य-धन्य वो जीवन है, जिनराज का भजन है,
जहां सदैव जारी, मुक्ति तरफ गमन है ॥४॥
आत्म-कमल में मेरे, सुगुण बसो ही तेरे,
लब्धिसूरि की वनती, अवधारो नाथ मेरे ॥५॥

(१६)

श्री वासुपूज्य जिन स्तवन

वासुपूज्य जिणंद सुखकार सही,
तेरा नाम कदापि मैं भूलुं नहीं,

साखी

तूं प्रभु सिरताज मेरा, तेरे चरण में आ पड़ा,
शिव मिले सेवा करणसे, उपकार अे तेरा बड़ा,
जयानंद रहो मेरे मनमें बसी, वासुपूज्य ॥१॥

साखी

चंपा पुरी मैदान में, देशना खूब दइ प्रभु,
अणसण करी आप मुक्ति पहोंचे, उपकार अे सच्चा विभु
रहे अन्त सुधी उपकार करी, वासुपूज्य ॥२॥

साखी

उस वख्त अे मुज को प्रभु, मिलता शुभ संयोग जो,
वाणी परिणत भाव से, हटता कर्म का रोग तो,
अे बात रही मुज दिल को दही, वासुपूज्य ॥३॥

साखी

तेरा शरण अब ही लिया, भवपार होने के लिए,
शुभ भाव से फल मिले, तुम ध्यान में चित्त को दिये;
ऐसी भक्ति मेरे दिल बैठ रही, वासुपूज्य ॥४॥

साखी

आत्म-कमल मेरा प्रभु, विकसित तेरे ध्यान से ;
लब्धिसूरि छूटो नहि, मुक्ति लगी अे जान से ;

रहो समकित रस अे नित्य वही, वासुपूज्य ॥५॥

(१७)

श्री शान्ति जिन स्तवन

आज शान्तिजिन दर्शन करके, यह हमने पुकारा है ;
दूर हटो, दूर हटो, दूर हटो, ऐ मायावाले !
धार्मिक भाव हमारा है,
जहां हमारा राज आतम है, और ज्ञान सतारा है,
जहां हमारा चरण-करण हो, भव से झट निस्तारा है,
उस धरम पर प्रेम बढाना, अत्याचार से न्यारा है,
दूर हटो, दूर हटो, दूर हटो, ऐ मायावाले !
धार्मिक भाव हमारा है, ... आज ॥१॥
मीला भाग्य से जिनजी प्यारा, भक्ति में हो मस्ताना,
राग द्वेष को छोडो जल्दी, नहिं फिर पडे पस्ताना,
आत्म-कमल में लब्धि प्यारा, मीले मुक्ति मिनारा हो,
दूर हटो, दूर हटो, दूर हटो, अय मायावाले !
धार्मिक भाव हमारा है,.. आज ॥२॥

(१८)

श्री शान्तिजिन स्तवन

ऐ शान्ति ध्यान न तेरा, जब तक ही मैं जपूंगा ;
ये राज जिंदगी का, तब तक मैं नहीं लहूंगा ,
रुलता हुआ ये जीवन, नहीं तत्त्वज्ञान पाया ;
अनजान बन इसीको, सूं ही है मैं गंवाया ;
मैं मोह की नींद सोया, देदार न तेरा जोया ॥१॥
ऐसी दशा से मुझ को, होना पड़ा दिवाना,
ऐ सिर के ताज मेरे, वाणी सुना जगाना ;
यह गुण प्रभुजी तेरा, कभी भी नहीं भूलुंगा ॥२॥

ऐज्ञान वाले ज्ञानी, तुम ज्ञान मुझ को देना,
आतम दीपक की ज्योति, हरदम जगाये रहना ;
लब्धि को ज्युं कमल है, निर्लेप तो करुंगा ॥३॥

(१९)

फलौधी मंडन श्री शान्तिनाथ जिन स्तवन

श्री शान्तिजिणंद की सुन्दर मूरती, मन को मोहे रे,
मन को मोहे रे, मेरे तन मन को मोहे रे ... (अंचली)
काने कुंडल माथु मुगट, रत्न आभूषण सोहे रे,
नयनानन्द निरखतां लाधे, सुरनर मन मोहे हे, मेरे मन को मोहे रे ॥१॥
चक्रवर्ती की ऋद्धि छोडी, त्याग प्रभुए लीनो रे,
संजम सुन्दर भाव धरी, केवल रस भीनो रे, मेरे मन को मोहे रे ॥२॥
समोसरण में वाणी सुना के, भविजन को बहु तारा रे,
संयम दान दिया जिनवर ने किया भव से किनारा रे, मेरे मन को ॥३॥
शैलेशी प्रभु ध्यान धरी ने, अडग चित्त दीनो रे,
सकल अधाती क्षय करीने, शिव मारग लीनो रे, मेरे मन को मोहे रे ॥४॥
आत्म-कलम में ध्यान धरुं प्रभु, नित्य-नित्य मन में तोरा रे,
फलौधी नगर में लब्धिसूरि का, तोड करमा का घेरा मेरे मन को ॥५॥

(२०)

(बड़ौदा) छांणी मंडन श्री कुन्थुनाथ जिन स्तवन

कुन्थुजिन मेरी भव भ्रमणा, मिटा दोगे तो क्या होगा? (अंचली)
चोरासी लाख योनि में, प्रभु मैं नित्य रुलता हूं ;
दयालु ! दास को तेरे, बचालोगे तो क्या होगा? कुन्थु ॥१॥
घटा धन मोह की आइ, छटा अन्धेर की छाई ;
प्रकाशी ज्ञान वायु से, हटा दोगे तो क्या होगा? कुन्थु ॥२॥
अहो प्रभु नामका तेरे, सहारा निश दिन चाहुं
समर्पी प्रेम अन्तरका, विकासोगे तो क्या होगा? कुन्थु ॥३॥
नहिं मुझे काम सोने का, नहिं चांदी पसन्द मुझको ;

चाहूं मैं आत्म की ज्योति, दिखा दोगे तो क्या होगा? कुन्थु ॥४॥

सच्ची मैं देव की सूरत, तुमारे में निहाली है,

लगा है प्रेम इस कारण, निभालोगे तो क्या होगा? कुन्थु ॥५॥

कमल जैसा तेरा मुखड़ा, देखा छायापुरी मांही,

बना लब्धि भ्रमर इस में, छुपा लोगे तो क्या होगा? कुन्थु ॥६॥

(२१)

(मारवाड़) पाली पासे भाद्राजनमंडन श्री मल्लिनाथ जिन स्तवन

मल्लिनाथ सही, मोह रति है नही (अंचली)

वीतराग सही, दिल भक्ति वही,

कमभक्ति गइ, गति सफल भइ ...मल्लिनाथ ॥१॥

प्रभु गुण ग्रही, भवपार लही,

रहे दुःख नहीं, मिले सुख सही ...मल्लिनाथ ॥२॥

भाद्राजन में सही, मुझ मन में सही,

प्रभु दर्श दिखा दो कहीं ने कहीं ...मल्लिनाथ ॥३॥

प्रभु आत्म-कलम नही, दिल कमल सही,

खिले लब्धि लही रहे राग नहीं ...मल्लिनाथ ॥४॥

(२२)

श्री नमिनाथ जिन स्तवन

जागो जागो प्यारे भया भोर ;

आज खूब पाये हैं मैंने जिनसार ...जागो ॥१॥

मेरा मन भी मगन, मेरा तन भी मगन,

प्रभु हटा दो करमन का शोर ;

आतम के अन्तर में पाया है जोर ...जागो ॥२॥

तारो जी तारो ये दिल है नाराज,

करमन का राज तोड़ो ये ताज ;

सताते मुझको ये आठों ही पोर ...जागो ॥३॥

भक्ति से जिनवर रखेंगे लाज,

नमि जिनराज, मिटे ये खाज,
टलेगा करमन का शोरबकोर ...जागो ॥४॥
हरदम दिलों में हो शासन की दाज,
तिरने को जहाज, मुक्ति का साज,
आठों ही भागे ये लुंटारे चोर ...जागो ॥५॥
सर्व हिकाने है जिनवर का राज,
मुक्ति के काज, पाया है आज ;
आतम की लब्धि में गुणों का दोर ...जागो ॥६॥

(२३)

श्री नेमनाथ जिन स्तवन

जिनकी भक्ति वही दिल में मोरी,
नेम की भक्ति वही दिल में मोरी (अंचली)
कर्म का सागर धर्म की नैया, जीव मुसाफिर जिन तरैयां,
जिन बिन मेरा कौन है भैया, रोज करुं हुं भक्ति भारी ;
ये नैया कदी न फंसे भव में मोरी, ..नेम की ॥१॥
लाख चौरासी गति दुःखीयारा, मुक्ति का है दूर किनारा,
हरदम कांपे दिल हमारा, क्यों विषयों में मात है जोरी ;
ये नैया हमेंशा पड़ी भव में मोरी ..नेम की ॥२॥
धारण कर ले संयम प्यारा, जल्दी मिले मुक्ति किनारा,
आत्म-कमल में लब्धि प्याःरा, त्यों भव की फेरी टले तोरी,
ये नैया कदी न फंसे भव में मोरी ..नेम की ॥३॥

(२४)

गिरनारमंडन श्री नेमिनाथ जिन स्तवन

नेमिजिन प्यारा, कल ब्रह्मधारा, कीजिए दुःखोद्धार
प्रभु शिव सुखकारा, भव दुःख हारा;
आतम तारा, कीजिए दुःखोद्धार,
दुःखोद्धार की शक्ति तुमारी, अपूर्व प्रभु जाणा :

मारग दु:ख उवेरवी आयो, दु:ख तिमिरहर भाण रे . नेमि ॥१॥

नेह नजर से निहाली दादा, दीजिए केवलदान ;

अनादि के आवरणो टाली, कीजिए निज समान रे . नेमि ॥२॥

पशुओं का प्रभु सुणी पोकारा, छुड़ा अे बंधन तास :

मैं प्राय: पशु सरीखा स्वामी, कर्म तोड़ी पूरो आश रे . नेमि ॥३॥

इस गिरनार उपर प्रभु पाये, दीक्षा नाण निर्वाण :

दास तमारो ते भूस्पर्शी, खाली रहे न सुजाण रे, . नेमि ॥४॥

राजीमति रंभासी नारी, त्यागी तुझे जिस दिल,

वो दिल प्रभु जो मुझ को दीयो, तो मानुं मिला अखिल रे . नेमि ॥५॥

संवत निधि मुनि निधीन्दु काले, चैत्री पुनम के दिन,

आतम राज लेने को लब्धि श्री नेमि चरणे लीन रे . नेमि ॥६॥

(२५)

श्री पार्श्वजिन स्तवन

अर्हन की भक्ति ना भुलुं, हां वह स्वामि निराले,

प्रभु मेरे पार्श्व बचाले, हां तुं ही पार लगा दे, अर्हन ॥१॥

दुनिया में कलबल, हैया मां हलचल,

तेरे बीन कोन समाले, हां वह स्वामि निराले, अर्हन ॥२॥

ज्ञान हीन दुनिया में ज्ञान ही चमके,

चित्त में हो मेरे जीया ले, हां वह स्वामि निराले अर्हन ॥३॥

आत्म कमल में प्रगटी है ज्योति ;

लब्धि में कर दे उजाले, हां वह स्वामि निराले अर्हन ॥४॥

(२६)

श्री पार्श्वजिन स्तवन

गावे भी वो, ध्याये भी वो, आत्म खजाना हो गया,

मेरे लीये तो नाथ का, ये ही सहारा हो गया ... गावे ॥१॥

पार्श्व जिया मीलन तो दे, स्हेजे मुझे हीलन तो दे,

मेरा लगा रहा है दील, तेरा तीराना हो गया ... गावे ॥२॥
माया का खेल खेल के, आंसु बहा के चल दिये,
लब्धि की लय लगी रही, मुक्ति मिलाना हो गया ... गावे ॥३॥

(२७)

श्री पार्श्वनाथ जिन स्तवन

शरण ले पार्श्व चरणों का, फिर फिर नहिं मिले मौका (अंचली)
देवन के देव अे सोहे, इन्हों को देख जो मोहे,
हटे तस दुःख दुनिया का, फ़िर फिर नहिं मिले मौका, शरण ॥१॥
इन्होंका नाम जो लेते, उन्होंको शिवसुख देते;
मारग यह मोक्ष जाने का, फिर फिर नहिं मिले मौका, शरण ॥२॥
अनादि काल भव भटका, जभी तूं पार्श्व से छटका;
मिला अब वख्त ध्याने का, फिर फिर नहिं मिले मौका, शरण ॥३॥
जिन्होंने सर्प को तारा, नमस्कार मंत्र के द्वारा,
वो ही तुम तार लेने का, फिर फिर नहिं मिले मौका, शरण ॥४॥
गुण है पार्श्व में जैसे, नहिं और देव में ऐसे,
यही व्यापार लगाने का, फिर फिर नहिं मिले मौका, शरण ॥५॥
कहे लब्धि जिणंद सेवौ, ऐसा है अन्य नहिं देवो;
भवाब्धि पार कर नौका, फिर फिर नहिं मिले मौका, शरण ॥६॥

(२८)

श्री पार्श्वजिन स्तवन

शुद्ध दर्शन देकर शिवपुर का,
दिखलाया द्वार जिनेश्वर ने,
एक पल में पाप विनाश किया,
भविजन का पार्श्व जिनेश्वर ने (अंचली)
जब काष्ठ में जलता नाग दिखा,
समझाया कमठ योगीश्वर ने,
जलते को काष्ठ से बहार किया,

सुनवाया मंत्र जिनेश्वर ने ..शुद्ध ॥१॥
सुन मंत्र को वो धरणेन्द्र हुआ,
नवकार का महिमा खूब किया,
दे दर्शन भव से पार किया,
भविजन को पार्श्व जिनेश्वर ने ..शुद्ध ॥२॥
दुनिया दोरंगी छोड़ दीनी,
प्रभु पाये शुभ संजम धन को,
तप करके घाती जलाय दिया,
लिया केवनज्ञान जिनेश्वर ने ..शुद्ध ॥३॥
प्रभु केवल पा उद्योत किया,
जग जीवों का उद्धार किया,
अंधेर हरा तिरि सुरनर का,
उपकारी पार्श्व जिनेश्वर ने ..शुद्ध ॥४॥
शुभ आत्म-कमल में ध्यान धरी,
शैलेशीकरण विषे विचरी;
ले मुक्ति शिव संपद को लिया,
सूरि लब्धि पार्श्व जिनेश्वर ने ..शुद्ध ॥५॥

(२९)

प्रभु याद करी तूं भज कर जा;
तूं भज कर जा तूं भव तर जा,
भज सके तो भज ही जाना,
नाहक भव में क्यों हि रुलाना,
जो धर्म किया है लेकर जा,
तूं भजकर जा तूं भवतर जा, प्रभु ॥१॥
लाभ नहीं और जग में देखा,
कैसे बतावुं इसका लेखा,
(तूं) फिर फिर चेतन भज, कर जा,

तूं भज कर जा तूं भव तर जा, प्रभु ॥२॥
प्रभु पार्श्व सेवा में लीन रहे,
ए आत्म शान्ति भरपूर लहे,
आत्म-कमल लब्धि भर जा,
तूं भज कर जा तूं भव तर जा . प्रभु ॥३॥

(३०)

जावाल मंडन श्री पार्श्वनाथ जिन स्तवन

प्रभु श्री पार्श्व की सेवा करेंगे हम करेंगे हम,
भवोदधि दुःख का दरिया, तरेंगे हम, तरेंगे हम,
सुरत मुज प्राण प्यारे की, धरेंगे हम धरेंगे हम,
उन्हीं के संग से जीया, भरेंगे हम, भरेंगे हम, प्रभु ॥१॥
तोड़ के मोह का बन्धन, उदासी हाके विषयों से,
सलोनी श्याम सुरत में, रमेंगे हम रमेंगे हम, प्रभु ॥२॥
प्रभु के नाम की पखा, रखेंगे हम, रखेंगे हम,
सोने चांदी की नहीं पखा, न पखा सुत दारा से, प्रभु ॥३॥
करम घटमाल बुरी को, छोड़ कर अब लगे पीछे,
तेरे एक नाम की माला, जपेंगे हम, जपेंगे हम, प्रभु ॥४॥
खुदी हम से हटे जिनवर, जपेंगे जाप को तब तक,
जुदाई नाथ की हमरी, हरेंगे हम, हरेंगे हम प्रभु ॥५॥
मरुधर देश जावाले, प्रभु का दर्श है पाया,
सूरि लब्धि पूरी मुक्ति, वरेंगे हम, वरेंगे हम प्रभु ॥६॥

(३१)

(मारवाड़) बीजोवा मंडन श्री पार्श्वनाथ जिन स्तवन

बलिहारी जाऊं वारी, पारस तोरी शान्त सुरत की बलिहारी,
तिन छत्र प्रभु शिरा पर छाजे, इन्द्र इन्द्राणी उवारी ॥१॥
नाग को तारी धरणेन्द्र बनाया, नवकार दिलाया दिलारी ॥२॥
आत्म विकासक संजमधारी, केवल दीपक कीया जारी ॥३॥

वाणी प्रभावे प्राणी को तारी, वरे मुक्ति वर नारी ॥४॥
बीजोवामंडन दर्शन पाकर, जीव बना जयकारी ॥५॥
आत्म-कमल में शैलेशी लब्धि, पा के करम दिये छारी ॥६॥

(३२)

चाणस्मा मंडन श्री भटेवा पार्श्वनाथ जिन स्तवन

ओ पार्श्व भटेवा रे, कर्मों को जरी रोकना, (अंचली)
काम न बस में, क्रोध न बस में, ए तूं सब जान रे,
अहो मेरो आतम जाने रे, कर्मों को जरी रोकना १
नब्ज न बस में, दिल नहीं बस में, ए तूं सब जाने रे,
अहो मेरो आतम जाने रे, कर्मों को जरी रोकना २
नरके रखडतां निगोद में पडतां, प्रभुजी बचावो रे,
सुख संपद लावो रे, कर्मों को जरी रोकना ३
तिर्यंच दुःखी या, देव भी दुःखी या, मानव दुःख दावो रे,
न होय धर्म सहावो रे, कर्मों को जरी रोकना ४
आत्म-कमल में, धर्म अमल में, शुभ लब्धि जगावो रे,
मुझे प्रभु शिवपुर द्वावो रे, कर्मों को जरी रोकना ५

(३३)

श्री गौड़ीपार्श्व जिन स्तवन

गौड़ी श्री पार्श्वजिन सेवो श्रीकार, आनंदकारी,
नगरी बनारसी जनन्या जिणंदजी;
मेरुशिखर नवराया हो स्वाम, भव दुःखहारी ॥१॥
तात आश्वसेन, वामा माता,
प्रभावती जस प्यारी हो स्वाम, शिव सुखकारी ॥२॥
संजम लई प्रभु केवल पाम्या,
भव्य जीवन हितकारी हो स्वाम, भाव दुःखहारी ॥३॥
आत्म-कमल करो, कर्मों थी न्यारा,
लब्धिसूरि शिवधारी हो स्वाम, भवि हितकारी ...४

(३४)

सादड़ी मंडन (मारवाड़) श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिन स्तवन

नित्य नमुं चिन्तामणी पारस,
सेवा प्यारी रे, के दिल मां धारी रे,
सादड़ी शहेर में आप बिराजो,
मन्दिर मोटो भारी रे,
देश-देश के यात्री आवे,
आनंदकारी रे, के दिल मां धारी रे . नित्य ॥१॥
नगर बनारस जन्म लियो प्रभु,
वामादेवी माता रे,
देव सकल मिल स्नात्र करायो,
हर्ष अपारी रे, के दिल मां धारी रे . नित्य ॥२॥
वरसीदान दइ संजम लीयो,
धाती कर्म खपायो रे,
वीतराग हो केवल पाम्या,
गुण गणकारी रे, के दिल मां धारी रे . नित्य ॥३॥
समोसरण में आप बिराजो,
निरखत आनंद पाया रे,
वाणी थारी सकल जनों को,
लागे प्यारी रे, के दिल मां धारी रे . नित्य ॥४॥
आत्म-कमल मां जिसने ध्याया,
सो शिवपुर को पाया रे,
लब्धिसूरि पाम्या श्री जिनवर,
मुक्ति प्यारी रे, के दिल मां धारी रे . नित्य ॥५॥

(३५)

श्री शंखेश्वर पार्श्व जिन स्तवन

पार्श्व शंखेश्वर स्वामी जिणंदवर, पार्श्व शंखेश्वर स्वामी,

नहीं विसरुं विसरामी, जिणंदवर . पार्श्व ॥१॥

पार्श्व को जपते, कर्म को खपते,

बनते अमरपद धामी, जिणंदवर . पार्श्व ॥२॥

प्रभु के मान से क्रोड मंगल है;

पद पद ऋद्धि हामी, जिणंदवर . पार्श्व ॥३॥

प्रात: पावन नाम सिमरतां,

पूरत है मन कामी, जिणंदवर . पार्श्व ॥४॥

जादव गण की जरा हटाइ;

हर दो हमरी स्वामी, जिणंदवर . पार्श्व ॥५॥

पार्श्व सिमरते वो नहीं डरते,

जिन गुण गण को पामी, जिणंदवर . पार्श्व ॥६॥

आत्म-कमल सुम लब्धिमाला;

खूब सुगंधी जामी, जिणंदवर . पार्श्व ॥७॥

(३६)

श्री नाकोड़ा मंडन श्री पार्श्वजिन स्तवन

प्रभु पारस को दिल से भुलाना नहि

नाकोड़ा मंडन भवि अध खंडन

प्रभु सेवा में दिलको मिलाना सही ॥१॥

वामनंदन शीतल चंदन

इस दुनिया से हमको छुड़ाना सही ॥२॥

आतमारामी दिल विसरामी

प्रभु अन्तर के गुण में झुनाना सही ॥३॥

शिवगति गामी गुणगण धामी

प्रभु दु:खियों के दु:ख को मिटाना सही ॥४॥

लूं जगव्यापी कर्म को कापी

सूरि लब्धि को भवसे तीराना सही ॥५॥

(३७)

श्री महावीर जिन स्तवन

मुज मनमें तुं ही, भुज तन में तूं ही,
मैं सदा रहुं जिन तुं ही ने तूं ही,
अब ही नहि तो कब ही सही,
प्रभु दर्श दिखावो कहीं ने कहीं ॥१॥
लाखों को तारे थे जिनवर,
अब हमको भी तारो दिलवर,
हम प्यासे हैं प्रभु शिवसुख के,
हमें चरण दिखादो, कहीं ने कहीं ॥२॥
तुम नाम रटन दिन रात करूं,
तुम ध्यानमें मस्त सदा ही फिरूं,
उम्मेद है हमको तारोगे,
प्रभु कर्म हरोगे कहीं ने कहीं ॥३॥
आत्म-कमल प्रभु सीमरण से,
सूरि लब्धिका होय विकास सदा,
हम कर्मों को अब चूर करो,
प्रभु दर्श दिखावो कहीं ने कहीं ॥४॥

(३८)

श्री वीर जिन स्तवन

भक्ति निराली, भक्ति निराली
कोइ मांगे रमा रामा, कोइ मांगे सुत,
भक्ति सुधा प्याला मांगु, जो है मुक्ति दूत.. भक्ति ॥१॥
कोइ कहे कृष्ण प्यारा, कोई कहे राम,
रहीम रहीम रटे कोइ, मुझे वीर नाम ॥२॥
कोई चाहे हाथी घोड़ा कोइ चाहे दाम ,
मैं तेरे से कुछ न मांगु, भक्ति में आराम ॥३॥

कोइ मांगे राजपाट, कोइ मांगे ठाट
कोइ मांगे स्वर्गवाट, चाहुं मुक्ति घाट ॥४॥
नीति मांगु रीति मांगु, मांगु प्रीति धाम,
आत्म-कमल लब्धि मीले, मील गया तमाम ॥५॥

(३९)

रखो प्रभु का ख्याल मनमें, रखो प्रभु का ख्याल
यही, यही पुनित है भव तरने को, वीर प्रभु प्रतिपाल ॥१॥
इस करमन की लखलीला में, लाखो हैं कंगाल,
चडती, पडती, हंसती, रोती, टेढ़ी इसकी चाल ॥२॥
नाम रटन है दुःख का नाशक, नाम रोज संभाल,
कर्म के कांटे चूर चूर जावे, जीवन हो उजमाल ॥३॥
आत्म-कमल में केवल महके, मीटे कर्म जंजाल,
मुक्ति पहुंचने पर यह लब्धि, होगा माला माल ॥४॥

(४०)

भजो महावीर के चरणों, छुडा देगा जन्म मरणो,
जगत में देव आत्मी है, सुख सबसे निराली है,
सुखों के है वशीकरणों, छुटा देगा जनम मरणों ॥१॥
जिन्होंने राज्य को छोडा, स्त्रियादिक से भी मुंह मोड़ा,
जगत अन्धेर के हरणो, छुटा देगा जनम मरणों ॥२॥
राग जिसमें नहिं लवलेश, नहिं किसी से है उनको द्वेष,
सेवो ए देव जगतरणो, छुटा देगा जनम मरणों..३
महामोहे जगत जीता, इन्हें इसको हरा दीत्ता,
सदा शिव लब्धि के वरणो, छुटा देगा जनम मरणों ॥४॥

(४१)

श्रीवीर जिन स्तवन

मैं कैसे आवुं प्रभुजी तुम्हारे दरबार..

मैं हूं रागी, तूं है विरागी, मैं हूं बड़ा ही गुन्हेगार..१
वीर प्रभु तूं गुणगणधारी, मुझमें अवगुण हजार..२
तुम प्रभु ज्ञानी, मैं अज्ञानी, मैं दीन तूं है सरदार..३
तूं सुखी प्रभु मैं हूं दुःखिया, कोइ करे न दरकार..४
तूं जुदा नहीं, मैं जुदा नहीं, कर्मे हुआ हूं खुंवार ..५
ज्ञान सुहावो, दर्शन लावो, चारित्र दियो सुखकार ..६
काम कषाय की तपत निवारो, ज्ञानामृत दियो सार..७
काल अनंतो खोयी विषयमां, अब नहि बनुं में गमार..८
कर्म को हारी, निज गुणधारी, दिया क्षपक तलवार ..९
आत्म-कमल में लब्धि विकासो, बेड़ा करो ने भवपार ..१०

(४२)

महावीर मेरे नैना, अमीरस से भर तो देना,
निरंजनो की नगरी, हमको भी दिखा देना ॥१॥
ममता की कुंज गलन में, पल पल में मर रहा हूँ,
दर्शन सुधा की प्याली, आकर के पिला देना ॥२॥
भवरूप दावानल में, दीन रेन जल रहा हूँ,
अमीरस की वृष्टि करके, दुःख दाह बुझा देना ॥३॥
तेरे धाम की मंझिल में, हताश हो रहा हूँ,
आशा दीपक बुझा है, आकर के जला देना ॥४॥
तेरे नाम की करामत, हमको रहे सलामत,
तूं ही तूं ही की धुन में, मुझको भी लगा देना ॥५॥
जो ही है रूप तेरा, वो ही है रूप मेरा,
पड़दा पड़ा है बीच में, आकर के उड़ा देना ॥६॥
छटक रही जीवन की, कबान हो सुकानी,
इधर उधर है फिरती, आकर के जमा देना ॥७॥

अब ज्ञान और चरण की, खूब म्हेर भुज पे कीजे,
आत्म-कमल में लब्धि, लहेरों को बहा देना ॥८॥

(४३)

भज महावीर मोरे भैया, वो क्रोड मंगल है सया,
जो वीर को निशदिन ध्यावे, पावत गति शिवरी..
हार गति ही लाख चोराशी, दुःख गयो भव को..
पामे दो केवल नयना, न होय कदी फ़ीको ..१
चांद सूरज सम शोभित, अनुपम है मोती,
लक्ष कोटि दिवाकर हारे, देख प्रभु ज्योति ..२
लगनी है थारी, सूरत है प्यारी,
आत्म-कमल में तुमको ध्यावुं, सुमतियां पाइ..
लब्धि सूरि गुण गावत, भारी पावत शिवनारी,
गावत भविजन भावथी, श्रीमहावीर के पास,
सेवा करते भाव धरी जो, मुक्ति जावन को ..३

(४४)

दुनिया में प्रभु वीर ने, सबको जगा दिया,
जिसने सदा यह मोह को, जड़ से भगा दिया,
सिखलाया मंत्र अहिंसा का, वचनों सुना सुना,
जिसने पिया अमृत यह, वो अमर बन गया..१
कहते थे पाखंडिया, श्री वीरने क्या किया,
तारे अनंत जीव को, जलवा दिखा दिया..२
महावीर तोरी ज्योतिए, दुनिया में छा रही,
अजब तेरे झोहर के, आगे कोई नहीं..३
आत्म-कमल में ध्यान जो, श्री वीर का रहे,
लब्धिसूरि सब संपदा, जीवन में लहे..४

(४५)

मंदिर में आ के सिरन को झुकाय देना है,
मेरे बढ़े हुए, करम को छीन लेना है,
जिनने जगत में, बीज बोया है,
धर्म रूपी अरु पाप जलाया सही..१
प्रभु ने प्रेम की बंसी, बजा के लुभा लिया,
प्रभु महावीर दिले लगा के शुभा लिया,
वीर बिना इस भव में साधन,
कोइ भवियों ने भव में सहारा नहीं,
प्रभु के धून की वाणी ने विषय छुड़ा दिया,
आत्म-कमल में लब्धि मिला दो,
बिन मुक्ति सुखों का उजाला नहीं..२

(४६)

वीर जिणंद भुज दिल में भाया, काल अनादि का मोह भगाया,
समकित मेरे दिल में बसाया, आतम ध्याया ज्योति जगाया,
तुम ही हो वीतराग बालम, तुम ही हो वीतराग..१
काल अनादि से भव में फंसाया, सुख नहीं पाया, दुःख में दराया,
तुम ही हो वीतराग बालम, तुम ही हो वीतराग ..२
प्रभु चरणों में सिर को झुकाया, दुःख हटाया, मोह मिटाया,
तुम ही हो वीतराग बालम, तुम ही हो वीतराग..३
अब निजवर मेरे दिल में छाया, गुण गण गाया, भव से तराया,
तुम ही हो वीतराग बालम, तुम ही हो वीतराग..४
भुला न जाये गुण को भुलाया, ज्ञान जगाया आनंद पाया,
लब्धि सूरि सुखकार बालम, लब्धि सूरि सुखकार बालम..५

(४७)

वीर वीर तुं भजता रे, तेरी पीर हरेगा सोय,
प्रभु वीर प्रीत को क्या जाने,
गुणीजन की गत गुणीयल जाने,
और न जाने कोय ..१
आत्म स्वरूप को क्या जाने,
भवरूप कूप को क्या जाने,
जिनवर भक्त सकल सो जाने
और न जाने कोय .. २
शिवपुर सुख को क्या जाने,
और कर्म दुःख को क्या जाने,
आतम ज्ञानी वो सब जाने,
और न जाने कोय..३
प्राभु वीर प्रीत गौतम जाने,
प्रभु वीर ध्यान मनमें आणे,
केवलज्ञानी पद को पाकर
शिवपुर पावे सोय..४
समकित रीत को क्या जाने,
जिनराज गीत को क्या जाने,
आतम की गत आतम जाने,
लब्धि पावे सोय..५

(४८)

आ के वीर प्रभु के मैं द्वारे खड़ा,
रत्न चिन्तामणी मेरी नजरे चढ़ा,

वर्धमान जिनेश्वर नाम बड़ा,
लेने मुक्ति को मैं तेरे चरणों पड़ा,
गुल को बुलबुल ज्युं गुण ग्रहुं,
मुबारक मुबारक मुंह से कहुं..१
तेरा जौहर गुणों का है चमक रहा,
तेरे दर्श को तरस रही है जहां,
आफताब ओ अन्धेरा मेरा हरो,
मेरा जल्दी ही भव से किनारा करो..२
तेरी वाणी सुणी मेरा काम हुआ,
अब दुष्ट करम बदनाम हुआ,
तेरे ध्यान से मेरी बदल गई दशा,
प्रभु तूं ही तूं ही है नयन में बसा..३
गुण तेरे हमेरे दीलो में रहे,
तेरे हुकम का झंडा सदा सिर बहे,
तेरा शासन चांद चकोर मना,
इससे आनंद आनंद खूब बना..४
गुण गान करी सुधा पान किया,
मानुं अजरामर पद अब ही लिया,
मेरे आत्म-कमल में विराजे रहो,
सूरि लब्धि के चित्त में भक्ति बहो..५

(४९)

मेरे दिल में श्री वीर विराज रहो,
ए सिर को सदा सिरताज रहो..
शुद्ध देव गुरु की टेक रहो, (अंचली).
जिन धर्म का रीति रीवाज रहो,
मुख से जिन ए उच्चार रहो,

और घट में दया का प्रचार रहो..मेरे..१

जिनराज मेरे रहीमगार रहो,

भाई भाई का दिल से मिलान रहो,

नहीं कोई किसी से विरोध रहो

प्रभु नाम हाजर हजूर रहो..२

तूं ब्रह्मा, विष्णु, महेश रहो,

और दुनिया भेद का छेद लहो,

नहिं जग में कुछ ही क्लेश रहो,

सब लोक में संप सरिता बहो..३

प्रभु गुण में दिल मुस्ताक रहो,

ए सबका भला कर पाक रहो,

मेरे आत्म-कमल में नाथ रहो,

सूरि लब्धि सदा जयकार रहो ..मेरे..४

(५०)

नांदिया (मारवाड़) मंडन श्री महावीर जिन स्तवन

बलिहारी महावीर गुण भावना रे,

गावना गावना गावना रे, बलिहारी (अंचलो)

सिद्धारथ को नंदन सोहे, त्रिशलादेवी झुलावना रे..१

साथ यशोदा लग्न बना के, भोगावली को खपावना रे..२

यौवन वय में महावृत्त लीनो, उपसर्गें स्थिर ठावना रे..३

साडाबार बरस तक सह के, केवलज्ञान उपावना रे..४

समोवसरण में देशना दे के, लाखो जनों को उध्धरना रे..५

नांदीया मंडन ! वीर जिनेश्वर ! भविक दिल से ध्यावना रे ..६

आत्म कमल में बन के अयोगी, लब्धि सूरि शिव पावना रे..७

वर्धमान जिनेश्वर नाम बड़ा,
लेने मुक्ति को मैं तेरे चरणों पड़ा,
गुल को बुलबुल ज्युं गुण ग्रहुं,
मुबारक मुबारक मुंह से कहुं..१
तेरा जौहर गुणों का है चमक रहा,
तेरे दर्श को तरस रही है जहां,
आफताब ओ अन्धेरा मेरा हरो,
मेरा जल्दी ही भव से किनारा करो..२
तेरी वाणी सुणी मेरा काम हुआ,
अब दुष्ट करम बदनाम हुआ,
तेरे ध्यान से मेरी बदल गई दशा,
प्रभु तूं ही तूं ही है नयन में बसा..३
गुण तेरे हमेरे दीलो में रहे,
तेरे हुकम का झंडा सदा सिर बहे,
तेरा शासन चांद चकोर मना,
इससे आनंद आनंद खूब बना..४
गुण गान करी सुधा पान किया,
मानुं अजरामर पद अब ही लिया,
मेरे आत्म-कमल में विराजे रहो,
सूरि लब्धि के चित्त में भक्ति बहो..५

(४९)

मेरे दिल में श्री वीर विराज रहो,
ए सिर को सदा सिरताज रहो..
शुद्ध देव गुरु की टेक रहो, (अंचली)
जिन धर्म का रीति रीवाज रहो,
मुख से जिन ए उच्चार रहो,

और घट में दया का प्रचार रहो..मेरे..१

जिनराज मेरे रहीमगार रहो,

भाई भाई का दिल से मिलान रहो,

नहीं कोई किसी से विरोध रहो

प्रभु नाम हाजर हजूर रहो..२

तूं ब्रह्मा, विष्णु, महेश रहो,

और दुनिया भेद का छेद लहो,

नहिं जग में कुछ ही क्लेश रहो,

सब लोक में संप सरिता बहो..३

प्रभु गुण में दिल मुस्ताक रहो,

ए सबका भला कर पाक रहो,

मेरे आत्म-कमल में नाथ रहो,

सूरि लब्धि सदा जयकार रहो ..मेरे..४

(५०)

नांदिया (मारवाड़) मंडन श्री महावीर जिन स्तवन

बलिहारी महावीर गुण भावना रे,

गावना गावना गावना रे, बलिहारी (अंचली)

सिद्धारथ को नंदन सोहे, त्रिशलादेवी झुलावना रे..१

साथ यशोदा लग्न बना के, भोगावली को खपावना रे..२

यौवन वय में महावृत्त लीनो, उपसर्गें स्थिर छावना रे..३

साडाबार बरस तक सह के, केवलज्ञान उपावना रे..४

समोवसरण में देशना दे के, लाखो जनों को उध्धरना रे..५

नांदीया मंडन ! वीर जिनेश्वर ! भविक दिल से ध्यावना रे ..६

आत्म कमल में बन के अयोगी, लब्धि सूरि शिव पावना रे..७

(५१)

चौदह स्वप्न स्तवन

सुपन देखत राणी त्रिशला मैया,
स्वर्ग से आ के प्रभु गर्भ वसैयां..१
प्रथम श्वेततर गजवर सोहे,
दूजे वृषभ है मन को हरैया..२
त्रीजे केसरी सिंह अति सोहे,
चौथे सुपने लक्ष्मी मैयां..३
पांचमे पुष्प की माल युगल है,
छठे चन्द्र है ज्योति धरैयां..४
सातमें सुरज झलहल दीपे,
आठमें ध्वजदंड गगन उडैया..५
नवमें मंगलकारी कलश है,
दशमे सरोवर वीचि नचैयां..६
एकादश क्षीरसागर सोहे,
बारमें गगन विमान घुमैयां..७
तेरमें सुपने रत्नकी राशी,
चौदमे अग्नि गगन पचैयां..८
आत्म कमल में लब्धि पावे,
चौद सुपन का दर्श करैयां..९

(५२)

श्री महावीर स्वामी पालणां नुं स्तवन

पालणे झुलत प्रभु वीर जिणंदा,
झुलणा झुंलावे श्री त्रिशला मैयां..१
रत्न कनकमय पारणुं सोहे,

मंगल गावे सब देव देवैयां..२
मोर मेना और पुतली जडिंदा,
गीत गावत तिहां किन्नर गवैयां..३
त्रण ज्ञान के धारी निजवर,
जग माया में नाहि नचैयां..४
भर यौवन में संजम पाये,
रमा रमणी का स्नेह हरैयां..५
आत्म-कमल में लब्धि ध्यावे,
धन्य हो जिनवर शिव वसैयां..६

(५३)

श्री सिध्धचक्र स्तवन

सिध्धचक्र मुज दिल में भाया, कल्पतरु सुखकार सोहाया,
नवपद शाखा जिसकी सवाया, सुर नरवर किन्नर गुण गाया,
तुमही जग विख्यात तारक, तुम ही जग विख्यात..१
बारह अंग में तुमरी छाया, माया नसाया शिव वसाया,
तेरा ही ध्यान प्रधान नवपद, तेरा ही ध्यान प्रधान ..२
सार सार सब तत्त्व मीलाया, श्री सिध्धचक्र के स्थान ठराया,
अव्वल है जग सार नवपद, अव्वल है जग सार..३
अरिहंत सिध्ध आचारज सोहे, वाचक मुनिपद मन को मोहे,
दर्शन ज्ञान निधान नवपद, दर्शन ज्ञान निधान..४
आतम मन में कमल बनाकर, अष्ट पांखडीओ नवपद ध्याकर
तप चरण अवदात जग में, तप चरण अवदात..५
आत्म कमल में तत्त्व बसाना, लब्धि मिलाना, गुण को खिलाना,
जपी सोहं पद जाप भवियां, जपी सोहं पद जाप..६

(५४)

लगी है चाह दर्शन की, मिटा दोगे तो क्या होगा,
अनंते ज्ञानदर्शन की, जहाँ हस्ती कही जाती
ऐसे गर मुक्ति के सुख को, दिखादोगे तो क्या होगा.१
अनंते जन्म मरणों से, सदा अे रुलती फिरती,
अनंते पराक्रमकी भगवान, निकासोगे तो क्या होगा..२
इसी संसार सागर में, मेरी नैया डुबी जाती,
मल्लाह बनकर मुझे स्वामिन्, उबारोगे तो क्या होगा..३
इसी संसार महावन में, मुझे महासिंह सताते हैं,
राग और देष प्रभु इनको, उड़ा दोगे तो क्या होगा..४
मेरे में ज्ञान दर्शन की, महा लब्धि कही जाती,
पड़ा है कर्म का पड़दा, उड़ा दोगे तो क्या होगा..५

श्रीजिन याद करो,

प्रभु की मूरति दिल में आइ, सुर नरेशों ने खुब गाई,
नयनों से नयन मिलाइ..श्री जिन ..१
याद करो तुम जिनको प्यारा, दुःखों हटेगा तुमारा,
अब मेरा प्रभु सहारा-सहारा
पल पल जिन ध्यावो बालमा, आत्म कमल खिलावो हम
लब्धि जीवन का है खसम..३

(५६)

प्रभु ने सिखाइ भिक्षा, निर्दोष हो के खाना,
पहेली भिक्षा जिन दिन लानी, काम मस्ती में कभी मत जाना,
नानी मोटी मां बहेन ज्युं गाना, निर्दोष हो के खाना ..१
दूसरी भिक्षा ज्ञान को ध्याना, अज्ञानी के पास न जाना,
विषय विकार को छोड़ के आना, निर्दोष हो के खाना ..२

तीसरी भिक्षा चारित्र लाना, चरण करण को कभी न भूलना,
घाती अघाती जला के आना, निर्दोष हो के खाना ..३
आत्म-कमल में पंचमी पाना, शिवरमणी में तूं लय लाना,
लब्धिसूरि संजम फल पाना, निर्दोष हो के खाना ..४

(५७)

तेरी भक्ति में चित्त बहे जिनेश्वर, मुक्ति के लिये,
अति आनंद है जहां पर, नहि है क्लेश की होली,
जन्म है नहि मरण है, ऐसी दो मुक्ति दिल खोली ..१
अनाचारी हूँ लाचारी, विचारी दोष देर कीजे,
प्रचारी ज्ञान ज्योति को, सदानन्द सुख को दीजे ..२
प्रभु सिरताज हो मेरे, उड़ा दो मोह का घेरा,
निजातम लब्धि लक्ष्मी का, बता दो जिनजी डेरा ..३

(५८)

जंजाली तूं क्यों बने मनवा, मुक्ति का पंथ मिलाले ..
तन धन जोबन में मस्ताना, बन पीछे पस्ताना,
रगझग रगझग जुही है जगकी, नाहक नाव डुबाना,
नैया तिराकर तट पर जाकर, क्यों नहीं मुक्ति मिलावे ..१
भूल-भूलैया मग तज चेतन, सरल पंथ में आना,
झगमग-झगमग ज्योति जगा के , केवल ज्ञान सुहाना,
आत्म खजाना खूब मझान, क्यों नहीं सिद्धि मिलावे ..२
जिन गुण गाना, दिल बहलाना, दुःख में नहीं मुरझाना,
लटपट, खटपट, झट तज चेतन, जन्म सफल कर जाना,
आत्म-कमल में लब्धि बसाकर, ज्योति से ज्योति मिलाना ..३

(५९)

ऐ-कर्म बता हमने बिगाड़ा है क्या तेरा,

परघट में दीवाली है मेरे घट में अंधेरा,
भव-भव में खूब भटकी, मेरे होश उड़ गये,
गुण गण चले गये, मेरे सुख दिन चले गये,
दुर्गति की ठोकरो ने, किया हाल क्या मेरा ..१
मैं उसको ढूंढता हूँ, जो सदा आबाद है,
मगर नसीब टेड़ा हुआ, जीवन उजाड़ है,
सोते ही सोते जाय, दिन रात ए मेरा ..२
हमने तो मुनियों से, सुने थे ये सुबयान,
किस्मत की लकीरों को, मिटाता है शुभ-ध्यान,
कर्मों के हेतु से है, चेतन रहा घेरा ..३

अंतरा

इससे गति चारका, लगा हुआ बाजार,
नारकी निगोद से, जीवन रहा हार,
शैयतानियत के सब बसे, लूंटत है लुटेरा,
मन चाहता है दिल में, मैं ज्योति जगा दूं,
जिनवर की शरण लेके, करी धर्म का डेरा,
तब उनको सुनाऊं मैं मेरे गम को उड़ाना,
मुक्ति के सकल सुख ने, मेरे दिल को लुभाया,
मेरे जिगर के कमरे में, ज्योति को जगाया ..४
छोटी सी मेरी अर्ज सुनो अय जिनराजा,
सुनो अय जिनराजा, सुनो अय जिनराजा,
एक बार मेरे मन रूप मन्दिर में तूं आजा,
मंदिर में तूं आ जा, अय जिनराजा,
लब्धि कहे है सूना, आत्म-कमल मेरा ..५

(६०)

जिनवर नावरिया, नैया पार लगादे रे जिन ०
भक्ति का रंग लगादे रे, जीना दो दिन का
दुःखी है दुनिया दुःख खजाना, कहीं है हंसना कहीं है रोना,
रहा झमेला जमाय रे ..१
मिलने वाले मिलो प्रभु से, पार लगा दे प्रभु भव जल से,
जैसे ही नाविक नैया ..२
जग माया के पास फंसाना, केइ मुझाना, केइ लुभाना,
जीवन युं ही गवाया रे ..३
यह संसार मुसाफिर खाना, फिर-फिर आना, फिर-फिर जाना,
भक्ति सरिता बहाय रे ..४
कर्म पंजर में नहीं फसाना, आत्म-कमल में लब्धि बसाना,
मुक्ति नगर मिल जाय रे ..५

(६१)

दिल में जो जिनवर का, सिमरण किया होता,
तो हमको न दुनिया का, यह दुःख सहना होता ..१
अब जिनवर के सिवा, कोई दिल में नहीं बसता,
वो जान के जीवन है, शरण ही लिया होता ..२
मालूम अगर जो होता, वे देव के हैं देवा,
दिल से लगा ही लेता, तजता कभी न देवा ..३
तूं है मेरा ही मेरा, ऐसा ही वचन देना,
आतम कमल में जिनजी, हमेशा मेरे रहना ..४
इतना जो दे दो हमको, उपकार तेरा बहना,
लब्धिसूरि ही तेरा, आधार दिल में लेना ..५

(६२)

जीया जिणंद गुण गाना

माया का पास, कर्मों का वास, इन्हीं को मिटाना ..१

प्रभु दर्शन मिलो, ले लो मुक्ति को चिलो,

इसके लिए संयम में, चित्त को लगाना ..२

जिनजी का नाम ले, सन्तोष दिल दे,

जपो जपो, तपो तपो, मुक्ति को मिलाना ..३

खिले तेरा ये आत्म साज, ले लो शिवपुर राज,

आत्म-कमल लब्धि ताज, लहरों में लहराना ..४

(६३)

मागो प्रभुजी के पास, शिवपुर प्यारे, भागो ..

अंतरा

अखीया में ज्योति डारे, कर्म भर्म हारे,

मुक्ति को मिलावी देत, नाभि के दुलारे ..१

दुःखीयों को देते साथ, भविजन के प्यारे,

पापी को तार देत, पाप को पछारे ..२

प्रभु है अनाथ नाथ, दुःख को निवारे,

आतम की लब्धि देत, मुक्ति के किनारे ..३

(६४)

श्री सुमति जिन स्तवन

जिया कियो रटन जिणंदा नाम मोर

जिया के हित हेतु शरण लेत है .. जिया ..१

अंतरा

तूं ही तूं ही दिल वसीया मोरे, और को कोइ सुहाय नाहि,

सुमति भइ जान सुमति ध्याय के,आतम लब्धि लाय रे ..२

(६५)

श्री महावीर जिन स्तवन

प्रभु दे दो दर्शन प्यारे, सुंदर सुरत तोरी मन लागे ..
सुंदर गुण तुम्हारे ..१

अंतरा

आज मुज घट ज्ञान उदय भयो, दर्शन करके बीरजी तारे,
आत्म-कमल सूरिं लब्धि जागो, जप जप ज्ञान किशोर ..२

(६६)

सामान्य जिन स्तवन

तूं ही आधार सकल भविजन को, पालक सचराचर जीवन को..१

अंतरा

तूं ब्रह्मा तूं ही विष्णु, जिननी तूं तारे सब ही जगत को..२
तूं ही त्राता तूं ही भ्राता, कारण तूं प्रभु मुक्तिगमन को..३
आतम कमल में लब्धिदाता, वारण तूं प्रभु भववन दव को..४

(६७)

सामला पार्श्व जिन स्तवन

सांवरियाजी को मेरा वंदन, मोरे विषयो भग जावे..सांवरिया..१

अंतरा

पार्श्व प्रभु तोरी शासन मतियां, जोर शोर शुद्ध करती मनवा..२
आत्म-कमल शुभ लब्धि भरवा, भोर भोर नित्य गावे भवियां..३

(६८)

ले लो ले लो प्रभुजी का नाम, हां ले लो ले लो प्रभुजी का नाम
बिसर गई मतियां हमारी,
जीया नाहि माने नाहि माने अधम विकारी,
कामे बना मैं लाचारी..१

अंतरा

हां हां तोरी वारी जाऊं, गुणदाम दीले डाऊं,
भवजल तार नौका, पार कीजे पार कीजे,
दिल के दिलारी, काम दाह को निवारी..२
आत्म-कमल प्यारी, लब्धि शोभे मनोहारी,
तरण तारण तुं ही, सुख दीजे सुख दीजे
सुगुण हारी, मुझे दिखा दो शिवनारी..३

(६९)

मति उलटी सुलटा दो बालम,
मोरे दिल में काती लगी है..१

अंतरा

तेरे गुण गण बीसर गये है,
अपना भाव बतादो बालम..२
मेरे दिल में साच बसा दो,
जुड़ की जड़ को जला दो बालम..३

अंतरा

आत्म-कमल में ध्यान की माला,
लब्धि सूरि को दिला दो वालम..४

(७०)

सखीरी आज प्रभुजी का ज्ञान सुणी,
सखीरी आज सुझत नहि कछु राग रंग..१

अंतरा

जात रही दुविधा तनमन की
भरण लगे शुभ भाव गगर भोरी,
ऐसे तरुं शुध्ध हो गइ मनकी,

खींच लीनो मन युं ही जिणंद..२

आत्म-कमल में लब्धि सूरि को,

तार दीयो शुभ ज्ञान भरी-मोरी।

पार करो नैया हम जन की

खींच लीयो शिवपुरी जिणंद..३

(७१)

सज्झाय

दुनिया दोरंगी देखी, वैराग्य दिल जागे,

जन्म-मरण के जारी, दुःख दो लगे है भारी,

भविजन अति मुंझाते, बुरा जगत् ए लागे..१

विषय बुरा हे भाई, करते तेरी तवाइ,

चेतन ले चित्त विचारी, दिल क्यों लगाता रागे-..२

गुण ग्राही बन सदा तूं, दोषो पराये त्यज तूं

सब गुण नहीं कहीं है, सब गुण वीतरागे..३

हर मान माया बुरी, अवगुण को दे तूं चूरी,

कोह लोह को हटा दो, दिल दो कषाय त्यागे..४

इंद्रियां कर ले काबू, भल कर्म को ए साबू

कर त्याग की तियारी, शिवसुख बड़ा है आगे..५

आत्म कमल में तेरा, वैराग्य का हो डेरा,

लब्धिसूरि इसीसे, कर्मों का केर भागे..६

(७२)

तूं चेत मुसाफिर चेत जरा, क्यों मानत मेरा मेरा है,

इस जग में नहीं कोइ तेरा है, जो है सो सभी अनेरा है

स्वारथ की दुनिया भूल गया, क्यों मानत मेरा मेरा है तूं..१

कुछ दिन का जहां बसेरा है, नहीं शाश्वत तेरा डेरा है

कर्मों का खूब यहां घेरा है, क्यों मानत मेरा मेरा है..२
ऐ काया नश्वर तेरी है, एक दिन वो राख की ढ़ेरी है
जहां मोह का खूब अंधेरा है, क्यों मानत मेरा मेरा है तु..३
बुरी ए दुनियादारी है, दुःख जन्म मरण की क्यारी है
दुःख दायक भव का फेरा है, क्यों मानत मेरा मेरा है..४
गति चार की नदी अें जारी है, भवसागर बड़ा ही भारी है,
ममतावश वहां बसेरा है, क्यों मानत मेरा मेरा है..५
मन आत्म कमल में जोड़ लियो, लब्धि माया को छोड़ दियो,
गुण मस्तक संजम शेरा है, क्यों मानत मेरा मेरा है..६

(७३)

थोड़ी तेरी जिंदगी है, क्यों तूं गुमाता है
जिंदगी में बंदगी तो, प्रभुजी का नाम है..१
विषयों को छोड़ यार, जोड़ प्रभुजी से प्यार
ज्ञान में गुलतान हो जा, यही सुखधाम है..२
जिसमें हे फनाह तेरा, कहा भाई मान मेरा,
बिजली विकास जैसा, नहिं थिर छाम है..३
धन धान मान तान, क्षण में विनाशी जाण
डाभ की अणीपें लगे, बुंद ज्युं तमाम है..४
भज भज जिनदेव, तज सब खोटी टेव
शिवपुर धाम में फिर, तेरा तो मुकाम है..५
कमल विकासी चहेरा, रहे हरदम तेरा
आतम लब्धि जो लाभे, यही तेरा काम है..६

(७४)

चेतन क्यों भव में भटकता है,
विषयपान कर गर्भों में, क्यों उंधा लटकता है

मोहमयी यह भूमिका, लग रहे दु:ख के झाड़
काल शिकारी का पड़ा, देख तुं आंखे फाड़
नाग ज्यूं उपर लटकता है, विषय चेतन..१
मोह लूंटेरा लूंटता, कर रहा जहां निवास
अवसर पर सभी जीव के, डाल गले में पास
आत्मधन लूंट अटकता है..२
भव भीतर रहता सदा, राग सिंह बलवान,
द्वेष केसरी भी जहां, करत जीवों की हान,
प्राण ले नीचे पटकता है..३
लाख चौरासी रुलता, होता नहीं होंशियार
बार बार इस स्थान में, खाता है खूब मार
समझकर क्यों न छटकता है..४
आत्म कमल में जप लियो श्री जिनवर का नाम
लब्धि सूरि संजम मिले, जावेगा शिवधाम
फिर नहीं भव में भटकता है विषय

(७५)

धर्म श्री जैन की श्रध्धा, नसीबां वर भवी पावे
नसीबां वर भवी पावे, नसीबां वर भवी पावे..१
राग और द्वेष से खाली, जहां श्री देव जिनवर है
सकल मिथ्यात्व मिट जावे, नसीबां वर भवी पावे ..२
गुरुकुल तार दुनिया के, न कंचन कामिनी राखे
सफर पैदल करे भावे, नसीबां वर भवी पावे ..३
दया है जैसी इस मत में, नहीं ऐसी किसी मत में
पूरण जीव रूप फरमावे, नसीबां वर भवी पावे
रखे निशदिन जो श्रध्धा, गति नर देव की पावे

गति पशु नरक नहीं जावे, नसीबां वर भवी पावे..५
कहे लब्धि विपद आवे, तथापि नैव गभरावे
गिने नवकार शुभ भावे, नसीबां वर भवी पावे..६

(७६)

मोह से तेरा कमाया, धन यहां रह जायगा
प्रेम से अति पुष्ट किया, तन जलाया जायगा
प्रभु भजन की भावना बिन परलोक में क्या पायगा?
कुछ कमाइ यहां न कीनी, खाली हाथे जायगा..१
जन्म मानव का अपूरव, पा के कर जग का भला
मत गला घोंटो किसी का जीवन यह उड़ जायगा
झूठ छोड़ो चोरी छोड़ो छोड़ दो परदार को
माया ममता को तजो तब, मुक्त हो झट जायगा..२
तन फना है धन फना है, स्थिर कोइ जगमें नहि
प्राण प्यारा पुत्र दारा, सब यहां रह जायगा
ज्ञान धर ले ध्यान धर ले, चरण में कर ले रुचि,
चपल जग की सब ही बाजी, छिनक में उड़ जायगा..३
मात नहि है तात नहि है, सुत नहि तेरा सगा
स्वार्थ से सब अपने होते, अन्त में देते दगा
मोह से क्यों मर रहा है, ध्यान से कर मन सफा
तप करी लो जप करी लो, भजन कर ले लो नफा..४
एकिला यहां पे तुं आया, एकिला ही जायगा
क्यों बुरे तूं कर्म करता, नरक में दुःख पायगा
वीर जिन उपदेश देते जो यह दिल में छायगा
आत्म कमले लब्धि लीला, जल्दी वो नर पायगा..५

(७७)

विषय की कैसे कटे मोरी चाह, करती यह फनाह

पांच इन्द्रियों पोषे इसको, मन है इसका नाह ..१

शब्द रूप रस गंध स्पर्श की, माया बड़ी है अगाह..२

छाई अनादि की यही मूरखता, वो यही ह्रदय में दाह..३

पिंड निर्युक्ति देखत जब हूं, विकट साधु का राह..४

नरक निगोद के दुःख सागर में, कर रहा अवगाह..५

चरण करण हीन मैं दुःख पावुं, मिलत नहि शिवलाह..६

आत्म-कमल में दर्श सुहाये, लब्धि होगी वाह वाह..७

आचार्य लब्धिसूरि कृत कतिपय ग्रन्थों की नामावली

१. श्रीभगवतीसूत्र व्याख्यान संग्रह, भाग १-३

२. मूर्तिमंडन

३. श्री चैत्यवन्दन स्तुति-चतुर्विंशति

४. लब्धि प्रश्न

५. तत्त्वन्यायविभाकर, भाग १-२

६. सन्मतिसोपानम्

७. द्वादशारनयचक्र, भाग १-४

परम पूज्य स्व० आचार्य विजय लब्धिसूरिजी महाराज
के व्यक्तित्व और कृतित्व के लिए
विनम्र प्रणामाञ्जलि

भूपेन्द्र नाथ जैन	इन्द्रभूति बरड़	प्रो० भागचन्द्र जैन
सचिव	संयुक्त सचिव	निदेशक

एवं

समस्त पार्श्वनाथ विद्यापीठ परिवार

विद्यापीठ के प्रांगण में

(विद्यापीठ समाचार-जुलाई-सितम्बर २००० तक)

आचार्यश्री राजयशसूरि म०सा० का चातुर्मास प्रवेश समारोह श्री श्वेताम्बर जैन मंदिर भेलूपुर में ७ जुलाई को प्रात:काल ९ बजे संयोजित किया गया, इसमें संस्थान के निदेशक प्रो० भागचन्द्र जैन ने भाग लिया और आचार्यश्री के स्वागत में दो शब्द कहे साथ ही आचार्यश्री के संस्थान के प्रति अभिव्यक्त स्नेह को रेखांकित किया। परिणामत: तुरन्त ही विद्यापीठ में **पूज्य राजयशसूरीश्वर विद्याभवन** एवं **उपाध्याय यशोविजय स्मृति मंदिर के** निर्माण की घोषणा कर दी गयी। आचार्यश्री की प्रेरणा और प्रो० जैन के अनुरोध से श्री धर्मेन्द्र गांधी ने पांच लाख रुपये के दान की घोषणा की। इसी प्रकार श्री रतनलाल मगनलाल देसाई, कलकत्ता, डॉ० किशोरभाई मुम्बई; श्रीमती मयूरी, अजयभाई शाह-अहमदाबाद प्रत्येक ने एक लाख ११ हजार रुपये अनुदान का वचन दिया जिसे संस्थान की प्रबन्ध समिति ने सहर्ष स्वीकार किया। इसी क्रम में ५ अगस्त को विद्यापीठ के प्रांगण में भूमिपूजन समारोह का आयोजन किया गया और १७ नवम्बर को दोनों भवनों के उद्घाटन की भी घोषणा हुई। समूचे कार्य में कुँवर विजयानन्द सिंह जी, अध्यक्ष पार्श्वनाथ जन्मभूमि जीर्णोद्धार ट्रस्ट, वाराणसी का समुचित सहयोग मिला। उनके सहयोग से दोनों भवनों का निर्माण कार्य तेजी से प्रारम्भ हो गया है। भूमिपूजन समारोह का विवरण पृथक रूप से इसी के साथ दिया जा रहा है। ९ जुलाई को शिकागो से श्री अनिल जैन विद्यापीठ परिसर में पधारे और यहां की गतिविधियां देखकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की। उन्होंने यह आश्वासन दिया कि वे संस्थान की इन गतिविधियों का प्रचार-प्रसार अमेरिका में करने का उत्तरदायित्व ले रहे हैं। १० जुलाई को प्रो० जैन स्थानीय पर्यटन विभाग गये एवं वहां के निदेशक से संस्थान को अपने मानचित्र पर ले आने का अनुरोध किया। पर्यटन विभाग ने संस्थान में योग और ध्यान शिविर संयोजित करने का आग्रह किया। १४ जुलाई को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लक्ष्मणदास अतिथिगृह में प्रात: १० बजे प्रो० विनोदचन्द्र श्रीवास्तव, निदेशक, उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला, के सान्निध्य में एक बैठक हुई जिसमें पार्श्वनाथ विद्यापीठ और उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के बीच कुछ परियोजनायें प्रारम्भ करने के विषय में चर्चा हुई। इस बैठक में संस्थान की ओर से प्रो० जैन, डॉ० अशोक सिंह एवं डॉ० श्रीप्रकाश जी पाण्डेय सम्मिलित हुए। इसी बैठक में प्रो० निसार अहमद भी उपस्थित थे।

पिछले समय प्रो० विनोदचन्द्र श्रीवास्तव के सान्निध्य में विद्यापीठ के निदेशक के साथ हुई बैठक के फलस्वरूप २४ जुलाई की शाम को डॉ० निसार अहमद के साथ एक बैठक हुई और उसमें प्राकृत संगोष्ठी आयोजित करने हेतु कार्यक्रम निश्चित किया गया। २७ जुलाई को प्रो० जैन नागपुर विश्वविद्यालय में परीक्षा समिति की बैठक में भाग लेने वहां गये, जहां उन्होंने श्री निहालचन्द्र जैन, श्री अमरचन्द मेहता और श्री कस्तूरभाई से मिलकर **तपागच्छ का इतिहास** नामक पुस्तक के प्रकाशन के सम्बन्ध में सम्भावनायें खोजीं और उन्हें आचार्यश्री का एक पत्र भी इस संदर्भ में दिया। श्री श्वेताम्बर जैनमंदिर की ओर से इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु अनुदान मिलने की सम्भावना है। ४ अगस्त को **संस्कृत सुभाषित प्रतियोगिता** का आयोजन उत्तर प्रदेश के लोक निर्माण मंत्री श्री कलराज मिश्र के सान्निध्य में भेलूपुर स्थित श्वेताम्बर जैन मंदिर में किया गया जिसमें संस्थान के निदेशक महोदय ने मिश्र जी से पार्श्वनाथ विद्यापीठ में पदार्पण करने का अनुरोध किया जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। ३ अगस्त को संस्थान के सचिव श्री भूपेन्द्रनाथ जी जैन भूमिपूजन समारोह में भाग लेने वाराणसी पधारे और ७ अगस्त को वापस लौटे। इस बीच उन्होंने संस्थान की समग्र गतिविधियों को निकट से देखा और सन्तोष व्यक्त किया। ११ अगस्त को उत्तर प्रदेश सरकार और भारत सरकार की ओर से आयोजित **प्रसिद्ध सांस्कृतिक शहरों का पुनरोत्थान-वाराणसी के विशेष संदर्भ में** विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लेने संस्थान के निदेशक स्थानीय क्लार्क होटल में गये और वहां लिखित रूप में अपने सुझाव प्रस्तुत किया। २० अगस्त को तिब्बती उच्चशिक्षा संस्थान, सारनाथ में **धम्मपद** पर एक संगोष्ठी में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विशेष प्रतिनिधि के रूप में संस्थान के निदेशक ने **प्राकृत धम्मपद** पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया जिसे बहुत सराहा गया। यहां यह उल्लेखनीय है कि उनके द्वारा हिन्दी और अंग्रेजी में अनूदित यह ग्रन्थ १९९० में सम्पादित होकर विस्तृत प्रस्तावना के साथ प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर से प्रकाशित हुआ था।

२७-२९ अगस्त तक **अखिल भारतीय संस्कृत पत्रकारिता राष्ट्रीय संगोष्ठी** शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आयोजित हुई जिसमें २९ तारीख को समापन समारोह के मुख्य वक्ता के रूप में संस्थान के निदेशक ने अपना विचार व्यक्त किया और पालि-प्राकृत विषय को भी संस्कृत के साथ जोड़ने का आह्वान किया। २५ अगस्त को जैन संस्थान, नरिया में एक वेदी प्रतिष्ठा समारोह का आयोजन हुआ जिसमें स्याद्वाद विद्यालय के पूर्व स्नातक डॉ० अरविन्द जैन, स्वास्थ्य राज्यमंत्री, उत्तर प्रदेश मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित हुए। वे प्रो० जैन के स्याद्वाद विद्यालय के सहपाठी रहे। उनके आग्रह पर वे

संस्थान में पधारे और इसे देखकर मंत्रमुग्ध से हो गये। इस अवसर पर संस्थान के सभी कार्यकर्ताओं एवं छात्रों ने उनका हार्दिक स्वागत किया और उन्हें संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य भेंट किया गया।

आचार्यश्री राजयशसूरीश्वर जी म०सा० की दो शिष्यायें पिछले जुलाई माह से संस्थान के परिसर में अध्ययनार्थ विराज रही हैं। संस्थान के निदेशक निरन्तर आचार्यश्री से सम्पर्क बनाये रखते हुए संस्थान के चातुर्दिक विकास की रूपरेखायें बना रहे हैं। इसी क्रम में **विक्रमसूरीश्वरस्मृतिग्रन्थ** तथा **श्रमण** का ***"श्रीलब्धिसूरीश्वर स्मृति अंक"*** निकालने का भी निश्चय किया गया। इसी तरह **यशोविजयजैन ग्रन्थमाला** की स्थापना कर ५१ लाख रुपयों का एक ध्रौव्यकोश बनाने के प्रकल्प पर विचार हुआ है जिसे प्रबन्ध समिति के पास सम्मति हेतु भेज दिया गया।

३१ अगस्त को सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में संस्कृत वर्ष के उपलक्ष्य में पन्द्रह दिवसीय **संस्कृतशास्त्र प्रशिक्षण शिविर** लगाया गया जिसमें ***"ईश्वरस्य जगन्निमित्तकार्णत्वं"*** विषय पर व्याख्यान देने के लिये निदेशक महोदय को निमंत्रित किया गया और १३ सितम्बर को शिविर के समापन के अवसर पर उनका सम्मान भी किया गया। इसी सप्ताह वाराणसी स्थित श्वेताम्बर और दिगम्बर मंदिरों में क्षमापना दिवस मनाया गया जिसमें संस्थान के शोधक विद्वान् सम्मिलित हुए। १६ सितम्बर को सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० राममूर्ति शर्मा की अध्यक्षता में वहां **प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय स्मृति समारोह** का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के निदेशक प्रो० भागचन्द्र जैन ने मुख्य अतिथि के रूप में भाग लिया। १७ सितम्बर को उन्होंने स्याद्वाद महाविद्यालय में आयोजित **वर्णी जयन्ती समारोह** की अध्यक्षता की जिसमें आचार्यश्री राजयशसूरीश्वर जी का भी प्रवचन हुआ।

संस्थान में १८ सितम्बर को *हंसराजनरोत्तमव्याख्यानमाला* आयोजित की गयी। व्याख्यान विषय था - **जैनधर्म और सामाजिक चेतना**। इसीदिन प्रस्तावित **जैनविश्वकोष** सम्बन्धी भी बैठक हुई जिसमें सम्मिलित होने के लिये संस्थान के सहसचिव श्री इन्द्रभूति बरड़, वाराणसी पधारे। श्री बरड़ के साथ सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो० टी०आर० जैन (फरीदाबाद) और डॉ० प्रेमचन्द्र गाड़ा (अमेरिका) भी पधारे। संस्थान के मार्गदर्शक प्रो० सागरमल जैन का भी इस अवसर पर शुभागमन हुआ। १९ सितम्बर को प्रातःकाल संस्थान में विद्वत् परिषद की एक बैठक हुई और दोपहर में इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र में **कलाकोश** के सम्बन्ध में एक बैठक हुई जिसमें निदेशक महोदय ने भाग लिया। २१ सितम्बर

को संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत संगोष्ठी हुई जिसमें संस्थान के प्राध्यापकों ने भाग लिया। २१ सितम्बर को **सहस्राब्दि विश्व हिन्दी सम्मेलन** में भाग लेने संस्थान के निदेशक प्रो० जैन दिल्ली गये जहां उन्होंने २२ सितम्बर को **हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में प्राकृत एवं अपभ्रंश का योगदान** विषय पर व्याख्यान दिया। इस अवसर पर अध्ययन-संशोधन के क्षेत्र में उनके विशिष्ट योगदान हेतु प्रशस्तिपत्र भेंट कर वहां उनका विशेष सम्मान भी किया गया। २८ और ३० सितम्बर को तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान, सारनाथ में **बौद्ध संस्कृति और महायान बौद्धधर्म** पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विशेष प्रतिनिधि के रूप में निदेशक महोदय ने व्याख्यान दिया।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ में आयोजित भूमिपूजन समारोह का विवरण

५ अगस्त २००० को पूर्वाह्न में पूज्य आचार्यश्री राजयश सूरिजी म०सा० की पावन निश्रा में एवं अन्य म०सा० की पुण्यदायी उपस्थिति में पू० आचार्यश्री की प्रेरणा एवं कृपा से निर्माण के लिए प्रस्तावित **उपाध्याय यशोविजय स्मृति मन्दिर एवं पू० राजयशसूरीश्वर विद्याभवन** हेतु शुभ मुहूर्त में भूमिपूजन, शिलापूजन, खननमुहूर्त एवं नामकरण विधि सम्पन्न हुई। इस कार्यक्रम का शुभारम्भ प्रातः ९ बजे हुआ। भूमिपूजन में श्री रतनलाल मगनलाल देसाई, कलकत्ता; डॉ० किशोरभाई शाह, बम्बई; श्रीमती पद्माधर्मेन्द्र गांधी, बम्बई; श्रीमती मयूरी अजयभाई शाह, अहमदाबाद; श्री अजीत समदरिया, जबलपुर तथा विद्यापीठ के सचिव माननीय श्री भूपेन्द्रनाथ जैन, फरीदाबाद सम्मिलित हुए। समस्त विधियाँ इन्दौरवासी श्री वेलजीभाई शाह ने सम्पन्न करवाई। सम्पूर्ण कार्यक्रम श्री प्रफुल्लभाई शाह के संगीतमय वातावरण में सम्पन्न हुआ।

इसके साथ ही बाहर से आये अतिथियों के सम्मान तथा पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्रकाशनों के विमोचन का भी कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इसका आरम्भ सुश्री इन्दु जैन के मंगलाचरण से हुआ। श्री भूपेन्द्रनाथ जैन ने आचार्यश्री के वाराणसी आगमन को विद्यापीठ के लिए अत्यन्त शुभ एवं महत्त्वपूर्ण बताते हुए सभी अभ्यागतों का स्वागत किया, और विद्यापीठ की स्थापना से लेकर आज तक के विकासोन्मुखी गतिविधियों का जीवन्त परिचय दिया। पार्श्वनाथ जीर्णोद्धार ट्रस्ट के अध्यक्ष कुँवर विजयानन्द सिंह, वाराणसी, जिन्होंने उक्त दोनों भवनों के निर्माण की व्यवस्था का दायित्व लिया है, ने भी अतिथियों का स्वागत किया। विद्यापीठ

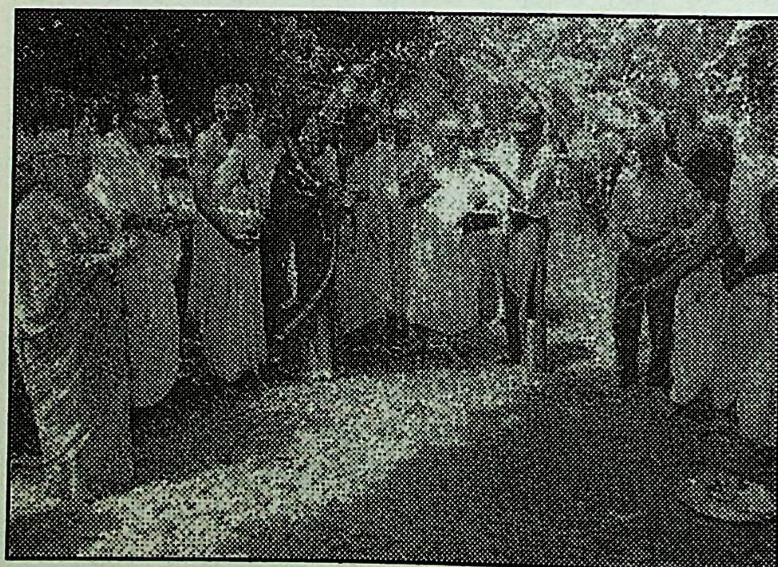
के निदेशक प्रो० भागचन्द्र जैन ने विद्यापीठ की भावी योजनाओं पर प्रकाश डाला। पू० आचार्यश्री ने विद्यापीठ में चल रहे कार्यों की सराहना करते हुए इसकी गतिविधियों को और व्यापक स्वरूप प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि आज ज्ञान के साथ-साथ क्रिया भी जरूरी है। चरित्र निर्माण शिक्षा का अनिवार्य अंग होना चाहिए। डॉ०भागचन्द्र जैन के संस्थान के प्रति समर्पण-भाव की भी आचार्यश्री ने भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि उनके ही अथक प्रयत्नों से इन दोनों भवनों का निर्माण संभव हो सका है।

श्री रतनलाल मगनलाल देसाई, कलकत्ता, डॉ० किशोरभाई शाह, बम्बई; श्रीमती पद्माधर्मेन्द्र गांधी, बम्बई; श्रीमती मयूरी अजयभाई शाह, अहमदाबाद; श्री अजीत समदरिया, जबलपुर; श्री भूपेन्द्रनाथ जैन, श्री रमेशचन्द्र बरड़, फरीदाबाद, सदस्य प्रबन्ध समिति; श्री वेलजीभाई शाह और श्री प्रफुल्लभाई शाह का विद्यापीठ की ओर से शाल, प्रतीक चिह्न और श्रीफल देकर बहुमान किया गया।

इस अवसर पर पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्रकाशनों - **जिनवाणी के मोती, अष्टकप्रकरण** (हिन्दी-अंग्रेजी) अनुवाद तथा **श्रमण** के ***जनवरी-जून*** अंक का विमोचन किया गया। इस समारोह में भाग लेने हेतु इलाहाबाद से प्रबन्ध-समिति के सदस्य श्री तिलकचन्द जैन, उनके अनुज प्रो० एस०के० जैन एवं प्रो० जे०डी० जैन पधारे। समारोह में उपस्थित अन्य गणमान्य व्यक्तियों में प्रो० बी०एम० शुक्ला, पूर्व कुलपति, गोरखपुर वि०वि०; प्रो० आर०सी० शर्मा, निदेशक-ज्ञानप्रवाह, प्रो० कानूनगो, प्रो० जे०पी० सिंह, नेहु, शिलांग; प्रो० आर०आर० पाण्डेय, प्रो० डी० गंगाधर, प्रो० माहेश्वरी प्रसाद, प्रो० राजमणि शर्मा, प्रो० रामायणप्रसाद द्विवेदी, डॉ० बशिष्ठनारायण सिन्हा, डॉ० मारुतिनन्दन तिवारी, डॉ० श्रीमती कमल गिरि, डॉ० फूलचन्द जैन, डॉ० कमलेश कुमार जैन, डॉ० शितिकण्ठ मिश्र, डॉ० मुकुलराज मेहता आदि उपस्थित थे। बनारस जैन समाज के भी श्री राजेन्द्रकुमार गांधी, श्री प्रवीण गांधी, श्री पारसमल भंडारी, श्री शेषपाल जैन, श्री सतीशचन्द जैन आदि उपस्थित थे। समारोह में भोजन का प्रबन्ध स्व० लाला हरजसराय जैन परिवार, फरीदाबाद की ओर से किया गया। बनारस पार्श्वनाथ जीर्णोद्धार ट्रस्ट के अध्यक्ष कुँवर विजयानन्द सिंह ने धन्यवाद ज्ञापन किया। कार्यक्रम का संचालन डॉ० अशोककुमार सिंह ने किया। समारोह का समापन पूज्य आचार्यश्री के मांगलिक से हुआ।



आचार्यश्री राजयश सूरीश्वरजी महाराज विद्यापीठ में भूमिपूजन के अवसर पर प्रवचन देते हुए



विद्यापीठ में आचार्यश्री के सान्निध्य में भूमिपूजन का एक दृश्य

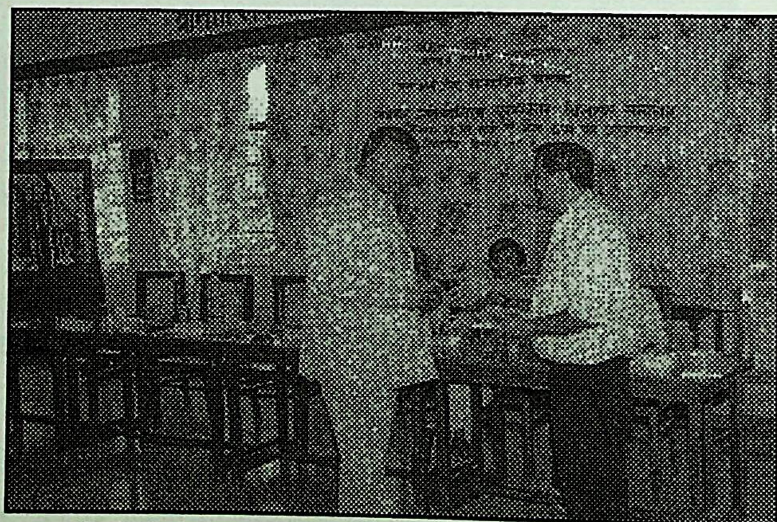
''जैनधर्म एवं सामाजिक चेतना'' पर संगोष्ठी एवं पुरस्कार वितरण समारोह सम्पन्न

पार्श्वनाथ विद्यापीठ द्वारा प्रवर्तित 'हंसराजनरोत्तम व्याख्यानमाला' के अन्तर्गत १८ सितम्बर को पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्रांगण में **जैनधर्म एवं सामाजिक चेतना** नामक विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। साध्वी जी महाराज के मंगलाचरण से कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ। प्रो० सागरमल जैन ने विषय प्रवर्तन किया एवं अध्यक्षता की प्रो० रमेशचन्द्र शर्मा ने। इस संगोष्ठी में डॉ० प्रेमचन्द जी गाड़ा एवं श्री लक्ष्मीचन्द जैन (अमेरिका), श्री जैन आत्मानन्द पी०जी० कालेज, अम्बाला के पूर्व प्रधानाचार्य सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो० टी०आर० जैन, विद्यापीठ के सहसचिव श्री इन्द्रभूति बरड़ विशेष रूप से उपस्थित थे। संगोष्ठी में उपस्थित अन्य विद्वानों में प्रो० बी०एन० सिंह, डीन-विधि संकाय, का०हि०वि०वि०; प्रो० ब्रह्मदेव नारायण शर्मा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी; प्रो० राधेश्यामधर द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी; प्रो० नन्दलाल जैन, रीवा; डॉ० राजकुमार जैन, दिल्ली; डॉ० फूलचन्द जैन, वाराणसी; श्री राकेश ब्रह्मचारी, कुण्डलपुर; डॉ० मुन्नीपुष्पा सिंघई, वाराणसी; प्रो० रामजी उपाध्याय एवं डॉ० शितिकंठ मिश्र-वाराणसी प्रमुख थे। संगोष्ठी के प्रमुख वक्ताओं में प्रो० रामजी उपाध्याय, प्रो० राधेश्यामधर द्विवेदी, प्रो० बी०एन० शर्मा, ब्रह्मचारी राकेश जी, डॉ० प्रेमचन्द जी गाड़ा और प्रो० रमेशचन्द शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं।

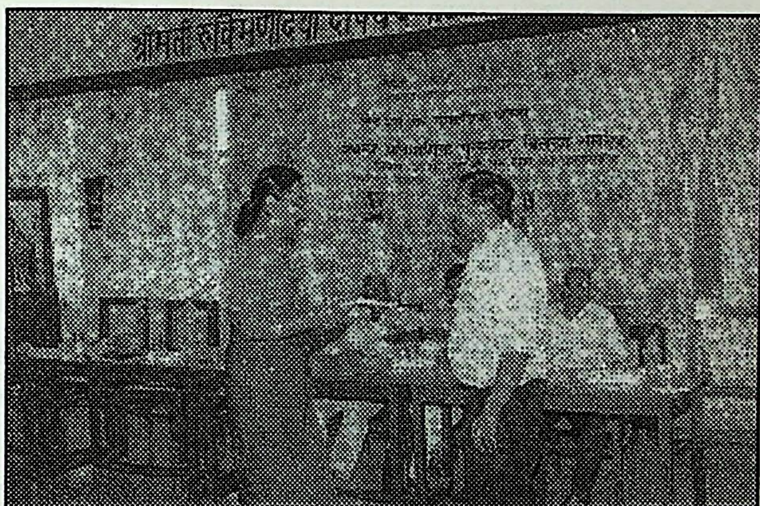
संगोष्ठी के पश्चात् निबन्ध-प्रतियोगिता में पुरस्कार विजेताओं को पुरस्कार वितरण का कार्यक्रम आयोजित किया गया। विद्यापीठ के सहसचिव श्री इन्द्रभूति जी ने निबन्ध प्रतियोगिता के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। इस कार्यक्रम में ६ पुरस्कार विजेताओं में से चार-कु० अर्चना श्रीवास्तव, श्री जेठमल चौरड़िया, श्रीमती उषा नाहर तथा श्री नीलेश सोनगरा उपस्थित थे। इन सभी को श्री बरड़ जी ने पुरस्कार राशि का ड्राफ्ट और प्रमाणपत्र प्रदान किया। कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् सहभोज का आयोजन रहा।



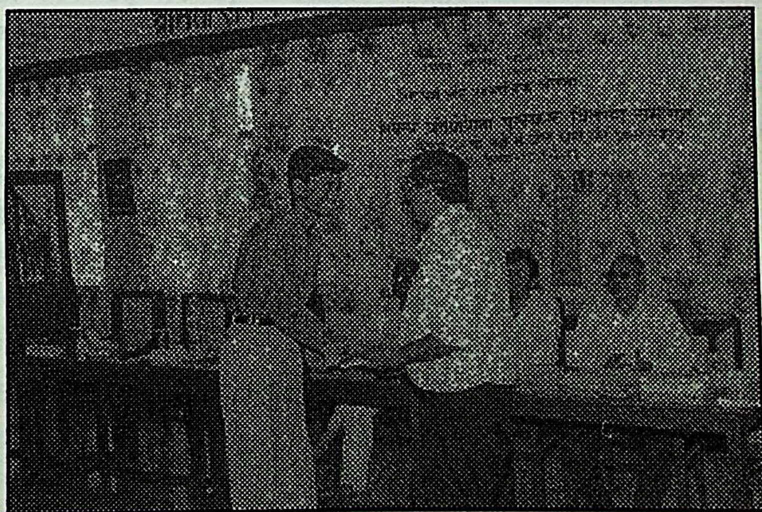
ग्रुप 'बी' प्रथम पुरस्कार विजेता कुमारी अर्चना श्रीवास्तव श्री इन्द्रभूति बरड़ से पुरस्कार ग्रहण करती हुई



ग्रुप 'बी' द्वितीय पुरस्कार विजेता श्री जेठमल चौरड़िया श्री इन्द्रभूति बरड़ से पुरस्कार ग्रहण करते हुए



ग्रुप 'बी' तृतीय पुरस्कार विजेता श्रीमती उषा नाहर श्री इन्द्रभूति बरड़ से पुरस्कार ग्रहण करती हुई



ग्रुप 'ए' तृतीय पुरस्कार विजेता श्री नीलेश कुमार सोनगरा श्री इन्द्रभूति बरड़ से पुरस्कार ग्रहण करते हुए

शोक समाचार

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के पूर्व अध्यक्ष

लाला अरिदमन जी दिवंगत



पार्श्वनाथ विद्यापीठ के पूर्व अध्यक्ष लाला अरिदमन जी का पिछले दिनों निधन हो गया। अमृतसर के सुप्रसिद्ध जैन परिवार में ई०सन् १९१६ में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता लाला जसवन्त राय जी थे। लाला अरिदमन जी की बाल्यावस्था व शिक्षण पुराने पैत्रिक मकान में ही हुआ। मैट्रिक तक की शिक्षा प्राप्ति के उपरान्त आप अपने पिता के व्यवसाय से जुड़ गये। कुछ समय पश्चात् आपने ऊन का व्यवसाय प्रारम्भ किया और दिल्ली में भी अपने दुकान की एक शाखा खोल ली। व्यापारिक कार्यों के साथ-साथ आपने सामाजिक कार्यों में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। आप अनेक वर्षों तक आचार्य सुशील मुनि के साथ भी रहे।

सन् १९८२ से १९८६ तक आप पार्श्वनाथ विद्यापीठ की संचालक समिति के अध्यक्ष रहे। अपने कार्यकाल में आपने धन व मन से विद्यापीठ के विकास में विशेष सहायता दी। आपके एकमात्र पुत्र श्री देवेन्द्रकुमार जैन हैं जो सभी दृष्टि से योग्य और पिता के पदचिह्नों का अनुसरण करने वाले हैं। आपकी स्मृति में आपके परिजनों की ओर से विद्यापीठ को ११००/- रुपये की राशि प्रदान की गयी। विद्यापीठ परिवार अपने पूर्व अध्यक्ष के निधन से मर्माहत है और उन्हें अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

जैन जगत्

सूरत में अपूर्व धर्म प्रभावना

सूरत ३१ जुलाई : श्रमण संघ के चतुर्थ पट्टधर आचार्य सम्राट शिवमुनि जी म०सा० के सूरत चातुर्मास के अवसर पर यहां अपूर्व धर्म प्रभावना हो रही है। प्रतिदिन आचार्यश्री सवा घंटे विविध जीवनोपयोगी विषयों पर प्रवचन देते हैं जिसमें कम से कम ५ हजार व्यक्ति उपस्थित रहते हैं। चातुर्मास के प्रारम्भ से ही यहां सुदीर्घ तपस्यायें भी प्रारम्भ हो गयी हैं। प्रति रविवार को बाल संस्कार शिविर का आयोजन हो रहा है। २९-३० जुलाई को स्थानकवासी समाज के सभी प्रान्तीय पदाधिकारियों एवं कर्मठ कार्यकर्ताओं का सम्मेलन भी आचार्यश्री के सान्निध्य में यहां सम्पन्न हुआ।

आचार्य सम्राट श्री आनन्दऋषिजी की जयन्ती सम्पन्न

श्रमणसंघ के द्वितीय पट्टधर स्व० आचार्यश्री आनन्दऋषि जी की जयन्ती देश के विभिन्न भागों में हर्षोल्लासपूर्वक मनायी गयी। इसी क्रम में जयपुर में जुलाई ३०-३१-०१ अगस्त को यहां तीन विभिन्न स्थानों पर तीन दिवसीय तप-त्याग, सामायिक दिवस के रूप में स्वर्गीय आचार्यश्री की जयन्ती मनायी गयी। ३० जुलाई को महावीर भवन, आदर्श नगर में, ३१ जुलाई को महावीर साधना केन्द्र, जवाहरनगर में और १ अगस्त को जैनस्थानक, लालभवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर में स्वर्गीय आचार्यश्री के जन्मशताब्दी समारोह का आयोजन रहा, जिसमें भारी संख्या में श्रद्धालु भक्तों ने उपस्थित होकर सामायिक साधना करते हुए महान् संत को श्रद्धासुमन अर्पित किया।

सूरत में जयन्ती समारोह का आयोजन आचार्य शिवमुनि जी महाराज के सान्निध्य में हुआ। इस अवसर पर इसी पाण्डाल में सामूहिक आयंबिल की भी व्यवस्था की गयी थी। समारोह में राजस्थान महिला मंडल द्वारा आयोजित निःशुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर में ४०० रोगियों को चश्मे मुफ्त प्रदान किये गये। श्री शैलेज कुमार जी द्वारा इस अवसर पर यहां १० दिवसीय स्वाध्याय शिविर का भी आयोजन किया गया जिसमें ३०० से अधिक श्रावक-श्राविकाओं ने भाग लिया।

मरुधरकेशरी मिश्रीमल जी म०सा० की जयन्ती सम्पन्न

उदयपुर १४ अगस्त : श्रमणसंघीय प्रवर्तक श्री रूपचन्द जी म०सा० की पावन निश्रा में मरुधर केशरी स्व० श्री मिश्रीमल जी म०सा० की ११०वीं जयन्ती दि० १४ अगस्त को उदयपुर नगरी में *नशानिषेधदिवस* के रूप में मनायी गयी जिसमें स्थानकवासी संत-संतियों के साथ-साथ दिगम्बर आचार्य श्री कनकनन्दी जी महाराज एवं महन्त श्री मुरलीमनोहर शरण शास्त्री जी ने भी भाग लिया। इस अवसर पर बड़ी संख्या में श्रद्धालुजन उपस्थित थे।

प्रवास कार्यक्रम सम्पन्न

जयपुर १६ अगस्त : अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के राजस्थान प्रान्त के अध्यक्ष श्री उमरावमल जी चौरड़िया के नेतृत्त्व में ५ सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल ने प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर विराजित प्रदेश के विभिन्न संत-संतियों से मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद ग्रहण करने के उद्देश्य से ४ दिवसीय प्रवास कार्यक्रम निर्धारित किया जिसके अनुसार ११-१२ अगस्त को माउण्ट आबू, १३ अगस्त को उदयपुर एवं १४ अगस्त को भीलवाड़ा का दौरा कर उन स्थानों पर विराजित संत-सतियों से मार्गदर्शन प्राप्त किया।

बद्रीनाथ तीर्थ पर आदिनाथ भगवान् की प्रतिष्ठा स्थागित

बद्रीनाथ : श्री आदिनाथ निर्वाण कल्याणक ट्रस्ट द्वारा बद्रीनाथ में होने वाली प्रतिष्ठा, जो कि पहले ११ अगस्त को व बाद में १४ अगस्त को होनी तय हुई थी, बद्रीनाथ क्षेत्र में प्रतिष्ठा के विरुद्ध होने वाले आंदोलन को मद्देनजर रखते हुए फिलहाल रद्द की गई है। ज्ञातव्य है कि वहाँ के कुछ स्थानीय तत्त्वों एवं कुछ साधु संन्यासियों द्वारा जन आंदोलन का नाम देकर मूर्ति स्थापना का विरोध किया जा रहा है व इसके विरोध में आत्मदाह तक की धमकी दी जा रही है। हालांकि आदिनाथ निर्वाण कल्याणक ट्रस्ट अपनी स्वयं की भूमि पर, वैधानिक प्रावधानों के अधीन स्वीकृत नक्शे पर प्रार्थनागृह बनवाकर उसमें आदिनाथ भगवान् की मूर्ति स्थापित करना चाहता था पर फिर भी कथित विरोध को देखते हुए प्रतिष्ठा अभी स्थगित कर दी गई है। मूर्ति वर्तमान में हरिद्वार में चिन्तामणि पार्श्वनाथ तीर्थ पर दर्शन-पूजन हेतु विराजमान है।

पूज्य गुरुदेव मुनिराज श्री जम्बू विजयजी म०सा० एवं साधु-साध्वी गण चातुर्मास हेतु बद्रीनाथ धाम स्थित, आदिनाथ निर्वाण कल्याणक द्वारा संचालित धर्मशाला में ही विराज रहे हैं। उनकी धर्माराधना सुख-शान्ति पूर्वक चल रही है।

पंचसूत्र उत्सव का आयोजन

श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ तीर्थ, हरिद्वार की पावन भूमि पर श्री दीपकभाई शाह के सान्निध्य में आचार्य हरिभद्रसूरि कृत **पंचसूत्र** के पहले अध्याय ***'पाप प्रतिघात-गुण बीजाधान सूत्र'*** पर एक त्रिदिवसीय शिविर का आयोजन किया जा रहा है। शिविर कार्तिक पूर्णिमा के शुभ अवसर पर दिनांक १०, ११, व १२ नवम्बर को आयोजित किया जायेगा। इच्छुक आराधक कृपया अग्रिम सूचना निम्न पते पर भेजें—

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, ४१ यू.ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-११०००७

प्रो० राजाराम जैन को राष्ट्रपति सम्मान

जैन समाज के शीर्षस्थ विद्वान् प्रो० राजाराम जैन को जैन विद्या के अध्ययन-अध्यापन एवं शोध के क्षेत्र में उनके उल्लेखनीय योगदान को देखते हुए भारत सरकार ने उन्हें वर्ष १९९९-२००० का प्राकृत-पालि भाषाविषयक राष्ट्रपति सम्मान (सर्टिफिकेट ऑफ आनर) प्रदान करने की घोषणा की है। यह सम्मान आगामी गणतंत्र दिवस के अवसर पर उन्हें एक भव्य समारोह में प्रदान किया जायेगा। इसके अन्तर्गत उन्हें आजीवन ५० हजार रुपये प्रतिवर्ष प्रदान किये जायेंगे। डॉ० जैन से पूर्व पं० दलसुखभाई मालवणिया और पं० दरबारीलाल कोठिया को भी राष्ट्रपति सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। पार्श्वनाथ विद्यापीठ की ओर से प्रो० जैन को उनकी इस गौरवपूर्ण उपलब्धि के लिये हार्दिक बधाई।

छात्रवृत्ति हेतु आवेदन पत्र आमंत्रित

श्री अरिहन्त जैन मण्डल, सूरत द्वारा प्रतिवर्ष होनहार किन्तु निर्धन जैन विद्यार्थियों को गणवेश, शुल्क, पाठ्यसामग्री प्रदान करने का निश्चय किया गया है अतः समस्त जैन संघ व संस्थाओं से निवेदन है कि वे अपने यहां के जरूरतमंद जैन छात्र-छात्राओं के प्रार्थनापत्र पिछले साल के अंकपत्र के साथ संघ के लेटरपैड पर लिखवाकर अध्यक्ष/मंत्री के हस्ताक्षर के साथ प्रेषित करें। आवेदनपत्र भेजने का पता-- श्री अरिहन्त जैन मण्डल, द्वारा-नवरतनमल कांकारिया, ८१२, अजंता शॉपिंग सेन्टर, रिंग रोड, सूरत-२, गुजरातराज्य।

फेडरेशन ऑफ जैन एसोसिएशन, नार्थ अमेरिका द्वारा प्रवर्तित ***श्री वीरचन्द राघवजी गांधी स्कालरशिप,*** भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में जैन धर्म-दर्शन, जैन साहित्य, जैन कला, जैन पुरातत्त्व, जैन मूर्तिविज्ञान आदि का अध्ययन या उन विषयों पर शोध कर रहे छात्रों एवं विद्वानों के आवेदनपत्र आमंत्रित हैं। स्कॉलरशिप की राशि १५ से १७ हजार रुपये प्रतिवर्ष है जो अधिक से अधिक ४ वर्ष तक मिल सकेगी। इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण हेतु निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें--

शारदाबेन चिमनभाई एज्युकेशनल रिसर्च सेन्टर, 'दर्शन', राणकपुर सोसायटी के पीछे, शाहीबाग, अहमदाबाद-३८०००४.

णमोकार महामंत्र निबन्ध प्रतियोगिता पुरस्कार घोषित

श्री प्रदीप अजमेरा के संयोजकत्त्व में आयोजित **णमोकार महामंत्र निबन्ध प्रतियोगिता** पुरस्कार के परिणाम घोषित कर दिये गये, जो इस प्रकार हैं--

प्रथम पुरस्कार विजेता - श्री लालचन्द हीराचन्द जैन, मानवत, जिला-परभणी, महाराष्ट्र।

द्वितीय पुरस्कार विजेता - (१) डॉ० (श्रीमती) उज्जवला सुरेश गोसावी, औरंगाबाद, महाराष्ट्र।

(२) कु० सविता जिनेन्द्र जैन, दमोह, मध्यप्रदेश

तृतीय पुरस्कार विजेता - (१) कु० आम्रपाली अशोक गंगवाल, औरंगाबाद, महाराष्ट्र।

(२) श्रीमती सुशीला पाटनी, नासिक, महाराष्ट्र

(३) श्रीमती मीना जैन, अकोला, महाराष्ट्र


Mukesh Jain
Vinesh Jain
Sri Vardhaman
Wholesale Dealers in : Embroidery, Fancy Sarees,
Plain & Printed Sarees, Dress Materials
104, Mint Street, Chennai - 600 079



With The Compliments of

Rachit Agencies Pvt. Ltd.

Sh. Rajender Jain

AND

National Elastic Industry

AG - 24, Ring Road, Shalimar Bagh, Delhi - 110052
Phone: 7473624, 7470887 and 7472385
FAX: 7470889
E-mail: rajender@nda.vsnl.net.in